CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रज- गौरव

होली अंक

ब्रज संस्कृति एवं विकास संस्थान (पंजीकृत), नई दिल्ली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रज महिमा

मानुस हो तो वहै रसखानि,
बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तौ कहा बसु मेरौ,
चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।।
पाहनु हौं तौ वहै गिरि कौ,
जो धरयौ कर छत्र पुरंद कारन।
जौ खग हौं तो बसेरौ करौं,
मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन।।

रसखान

राधौसधि

न्हात जमुना मै जलजात एक देख्यौ जात,
जाकौ अध–ऊरध अधिक मुरझायौ है।
कहै रतनाकर उमहि गहि स्याम ताहि
बास–बासना सौं नैकु नासिका लगायौ है।।
त्यौं ही कछु झूमि घूमि बेसुध भए कै हाय
पाय परे उखरि अभाय मुख छायौ है।।
पाए घरी द्वैक मैं जगाइ ल्याइ ऊधौ तीर
राधा नाम कीर जब औचक सुनायौ है।।

जगन्नाथ दास "रत्नाकर"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रज-गौरव

(ब्रज मंडल की अंतरराष्ट्रीय शोध-पत्रिका)

वर्ष 2004 ब्रज की होरी-विशेषांक अंक 4-5

प्रबंध संपादक

प्रो. डॉ. राम नारायण गोयल

संपादक

डॉ. हरि सिंह पाल

प्रकाशक:

ब्रज-संस्कृति एवं विकास संस्थान

429, प्रकाश कॉलोनी, ईस्ट ऑफ कैलाश,
नई दिल्ली -110065
दूरभाष : 26415310, 26225510
ई.मेल : sanshi@now-india.net.in

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रज संस्कृति एवं विकास संस्थान

नई दिल्ली-110065

ब्रज मंडल की संस्कृति, कला, लोक जीवन
एवं ब्रज के चतुर्मुखी विकास के प्रचार तथा
प्रसार में निरंतर तत्पर रहे –

इस विश्वास के साथ होली के पावन पर्व पर
हार्दिक शुभकामनाएँ :

बनवारी लाल गर्ग
अध्यक्ष ब्रज कला केन्द्र, मथुरा (उ० प्र०)।

A-166, सफदर जंग एन्कलेव,
नई दिल्ली -110029

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रज की होरी

विषयानुक्रमणिका

संपादकीय :-

प्रबंध - सम्पादक की कलम से :-

खंड (क)

१.	होली : आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक चिन्तन	- पूज्य कार्ष्णि स्वामी श्री गुरुशरणानन्द जी महाराज	१
२.	भारतीय संस्कृति में उत्सव का अर्थ	- लक्ष्मीकांत वर्मा	५
३.	होली का मूल आधार है सामाजिक व्यवस्था	- सत्येन्द्र प्रसाद सिंह	१०
४.	प्राचीन भारत में होली	- डॉ० हरि सिंह पाल	१३
५.	फागुन के दिन चार	- गुणाकर मुले	१५
६.	हिन्दी कविता में होली प्रसंग	- डा० बलदेव वंशी	२०
७.	जग में होरी-ब्रज में होरा	- प्रो० डॉ० नजीर मुहम्मद	२३
८.	ब्रज लोक गीतन में होरी	- डॉ० सरोजनी कुलश्रेष्ठ	२७
९.	ब्रज होरी कौ रंग हुरियारेन के संग	- मोहनलाल शर्मा	३२
१०.	ब्रज का चरकुला नृत्य	- मोहन स्वरुप भाटिया	३७
११.	बरसाने की लठामार होली	- डॉ० हरि सिंह पाल	४१
१२.	अबीर गुलाल सूँ झोरी भरी	- हर्षनंदिनी भाटिया	४४
१३.	अनूठी परंपराओं के लिए जग-प्रसिद्ध ब्रज की होली	- सैय्यद इख्तियार जाफ़री	४७
१४.	विभिन्न प्रांतों में होली के रंग	- तेजेन्द्र सिंह	५१
१५.	ऐसे मनाते हैं आदिवासी - अपनी होली	- पुष्पा पाल	५६
१६.	होली पर गाए जाने वाले अनराए गीत	- आर एस. रमन	५९
१७.	ललित कला में होली	- ज्योतिष जोशी	६१
१८.	विदेशों में भी मनाई जाती है होली	- हिमांशु गोयल	६४
१९.	होली : बुंदेलों का लोकोत्सव	- नर्मदा प्रसाद गुप्त	६६
२०.	चहुँ दिस उड़ै अबीर, मिटै रे मन-मन की पीर	- डा० सन्तवख्श श्रीवास्तव	७१
२१.	पचास दिनों तक चलती है ब्रज में होली	- नर्मदा प्रसाद गुप्त	७३
२२.	मस्त महीना फागुन का	- डा० राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी	७६
२३.	आज विरज में होरी रे रसिया	- डा० हर्षनन्दनी भाटिया	८०
२४.	ब्रज की होरी	- प्रो० डा० राम नारायण गोयल	८३
२५.	ब्रज-देवालयों में : होली पर्व पर "समाज गान"	- डा० राकेश बाला सक्सैना	८७

खंड (ख) विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा खेली गई होली।

	(१) राजनेताओं की होली	९१
	(२) साहित्यकारों की होली	९३
	(३) सांस्कृतिक कर्मियों की होली	९६

खंड (ग) काव्य एवं लोक गीत (रसिया) ९८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संपादकीय

भारत एक उत्सवप्रिय पुण्यभूमि है। यहाँ मनुज तो क्या देवता भी बसने के लिए लालायित रहते हैं। अनेक भाषाओं, असंख्य बोलियों और सांस्कृतिक बहुलता से परिपूर्ण यह विशाल देश, अपनी विविधता में एकता के लिए विख्यात है। प्राचीन समय का मध्यदेश और उसका केन्द्र, ब्रजमंडल अपनी सास्कृतिक संपन्नता और आध्यात्किम उत्कर्ष के लिए महाभारत काल से ही जाना जाता रहा है। **''सात वार और नो त्योहार''** की उक्ति यहीं पर सत्य सिद्ध होती हैं। ऋतुराज बसंत का मुख्य पर्व होली तो सम्पूर्ण देश में ही, आनन्द, उमग और उल्लास के लिए लोकप्रिय है, किन्तु ब्रज में तो -**''जग में होरी ब्रज में होरा''** के रुप मे विख्यात है।

ब्रज संस्कृति व विकास संस्थान द्वारा "ब्रज गौरव" के होली विशेषांक का प्रकाशन किया जाना स्वाभाविक है। अब तक ब्रज गौरव के जितने भी अंक प्रकाशित हुए है वे सभी, जन–मानस और पाठकों द्वारा व्यापक रुप से सराहे गए हैं। इसी श्रृखला में **होली विशेषांक** के प्रकाशन की योजना बनाई गई। संस्थान के महानिदेशक, आदरणीय डॉ० गोयल जी ने विशेषांक के संपादन का उत्तरदायित्व मेरे विपन्न कंधों पर डाला तो, उनके आदेश को टालना मेरे लिए संभव नहीं था। सीमित समय में, विभिन्न स्रोतों से सामिग्री एकत्रित की गई। होली तो हमारा "महापर्व" है। इस पर तो सामग्री का विपुल भंडार है। जरुरत रह जाती है, चयन की, सभी एक से एक बढ़कर संदर्भित, सामयिक और महत्पवूर्ण। अपनी अल्पबुद्धि और सीमित क्षमता के बलबूते के आधार पर जो प्रस्तुत कर सका हूँ वह सम्पूर्ण तो कदापि नहीं, अपितु ब्रज–संस्कृति के महासागर का, मात्र एक अंश भर ही है। सयाने लोग तो एक चावल देखकर ही पूरी देगची का अंदाजा लगा देते हैं। ब्रज गौरव के पाठक तो सयाने के साथ साथ, सच्चे पारखी भी हैं।

संभवतः यह अंक भी पाठकों की अपेक्षाओं के अनुरुप ही होगा। जिन विद्वान लेखकों और कवियो तथा मनीषी–विचारकों की रचनाएं इस अंक में प्रकाशित हुई हैं उनके प्रति संस्थान और मैं अपनी ओर से हार्दिक आभार ज्ञापित करता हूँ। जिन स्रोतों से सामग्री प्राप्त हुई है वे भी साधुवाद के पात्र है। **''दोऊ हाथ उलीचिए यही सयानो काम''** ज्ञान का भडार जिना बाँटा जाए उतना श्रेयस्कर है।

अग्रज डॉ० गोयल जी का मार्गदर्शन और डॉ० रामस्वरुप शर्मा जी का सहयोग ही इस **विशेषाँक** को यह स्वरुप दे पाया है। अतः इस अंक में जो कुछ अच्छा बन पाया है, उसका श्रेय इन दोनों विद्वानों को ही है। निस्संदेह कुछ अपूर्णताएँ भी होंगी, कुछ व्यतिक्रम भी होगा, कुछ पक्षपात भी प्रतीत होगा, उसका उत्तरदायित्व, विनम्रता के साथ, क्षमायाचना सहित मैं स्वीकार करता हूँ। फिर भी संतोष इस बात का है –**''त्वदीयं वस्तु येत्गोविन्दम् तुम्यमेव समर्पयेत्''**

❁ बोल वँशीवारे की जय। राधा रानी की जय। ❁

डॉ० हरिसिंह पाल

नई दिल्ली, महाशिव रात्रि दिनांक : १८ फरवरी २००४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रबंध संपादक की कलम से

वर्तमान समय में पत्रिकाओं का प्रकाशन करना एक "टढ़ी खीर" बनती जा रही है। यह अर्थ–वाद का युग है। जिस किसी से भी कहो, भई एक लेख लिखदो अथवा लिखकर भेजदो– हाँ हाँ जी भेज देंगे। डाकिया का इंतजार करते महीना बीता, दो बीते, कई बीते, प्रतीक्षा में कि लेख आता ही होगा किन्तु लेख प्राप्त नहीं होता, कारण लेख के बइले देने को तो हम पर कुछ दाम है ही नहीं। फिर लेखक मित्र/ मित्रों को पत्र भेजते, कोई उत्तर नहीं, फोन करते हाँ हाँ डॉ० साहब समय नहीं मिल पाया अब जल्द ही भेज देंगे। किन्तु "न बाबा आवै न घंटा बाजे" की कहावत चरितार्थ हो जाती है। लेकिन हम काँ पीछा छोड़ने वाले। लगे रहते हैं लेखक–मित्रों के पीछे और लेखों को प्राप्त कर लेने के पश्चात् ही दम लेते है। तो पहली कठिनाई अच्छे लेखों की प्राप्ति है।

तत्पश्चात् लेखों में काट–छांट करने के लिए सम्पादक श्रीमान को कष्ट देने पहुँचना पड़ता है। हमारे सम्पादक महोदय हम पर बड़े दयालू हैं। अतः वे हमारी लाज रखने के लिये तत्पर अपने कार्य में जुट जाते हैं और कुछ दिनों में ही इन लेखों का (जहाँ आवश्यकत होती है) परिमार्जित कर उन्हें क्रम बद्ध कर लैसर टाइप सैटिंग के लिये हमारे पास भेज देते हैं। इस प्रकार पुनः गेंद हमारी पाली में आ जाती है।

लेसर टाईप सैटर के पास जब इन लेखों का पुलिन्दा भिजवाया जाता है। तो वे भी नखरा दिखा जाते हैं क्योंकि इस कार्य से उन्हें कुछ बचता–बचाता नहीं है। कम से तीन बार तो उन्हें टाइप कर प्रूफ की अशुद्धियों को ठीक करना पड़ जाता है। संस्कृत उन्हें आती नहीं और हिन्दी का भी अल्पज्ञान होता है। जो हो उनसे भी काम करा लिया जाता है।

अब प्रेस और कागज की व्यवस्था करना शेष रह जाता है। हमारी प्रत्रिका 'ब्रज गौरव' एक व्यावसायिक पत्रिका तो है नहीं। समाज सेवा और भारतीय संस्कृति, यों कहो युग निर्माता वासुदेव कृष्ण की जन्म भूमि की संस्कृति और कला के प्रचार एव प्रसार के लिए हम यह शोध–प्रकाशित करते हैं तथा समाज के विभिन्न वर्गो में इसका वितरण होता है। विश्व के सभी भागों में इसको पहुँचाने का भी प्रयास किया जाता है। विज्ञापनों पर ही इस पत्रिका का प्रकाशन निर्भर करता है। विज्ञापन दाता भी व्यावसायिक दृष्टिकोण अपनाते है और सामाजिक कर्त्तव्य की ओर कम ही ध्यान देते हैं, जबकि प्रमुख अमरीकी प्रबंध शास्त्री एफ०डब्ल्यू०ड्रकर का कहना है कि "व्यावसाइयों और उद्योगपतियों को सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को बढ़ावा देने के लिये आगे आना चाहिए। उन्हें अपने सामाजिक दायित्व से पीछे नहीं हटना चाहिए"। संक्षेप में विज्ञापनों को प्राप्त करने के लिए दौड धूप करना अनिवार्य हो जाता है जो एक सहज कार्य नहीं हैं। इस कार्य को भी मुझे ही निभाना पड़ता है। (कभी कभी मेरी पत्नी मुझपर झुँझला पड़ती है क्यों भीख माँगते हो, क्या मिलता है तुम्हें इस पत्रिका को निकालने में, स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, बूढ़े ७४ वर्ष के होने आए फिर भी दौड़–धूप में लगे रहते हो") कभी हम उत्तर नहीं देते हैं, चुप हो जाते हैं और कभी–कभी कह बैठते है, भाग्यवान तुम नहीं समझ सकोगी इस अनुभूति को, हम तो मुँशी प्रेमचन्द की भांति ब्रज भूमि तथा साहित्य की सेवा में लगे हुए हैं और अपने जैसे कुछ लोगों को साथ लेकर आगे बढ़ रहे हैं। अतः तुम हमारी चिन्ता करना छोड़ दो।

ये कठिनाइयाँ वास्तविक कठिनाइयाँ हैं जिनसे डर कर अपना लक्ष्य त्यागना बुद्धिमत्ता नहीं कहलाती। व्यावसायिक क्षेत्र में पत्र/पत्रिकाओं को प्रकाशित करने का जो उद्देश्य होता है उसमें व्यवसायी को लाभ कमाने का अभिप्रेरण होता है किन्तु सामाजिक पत्रिकाओं के प्रकाशन का अभिप्रेरण भी उद्देश्य की सफलता है।

ब्रजगौरव के 'ब्रज की होरी' के प्रकाशन में मुझे अपने मित्रों से अत्याधिक सहयोग मिला है। मेरे साथी डा० राम स्वरुप शर्मा और डा० हरिसिंह पाल ने लेखों के संकलन और चयन तथा प्रूफ रीडिंग में लिस तत्परता से कार्य किया है वह निस्संदेह सराहनीय है।

विज्ञापनों को प्राप्त कराने में भी मेरे मित्रों ने मेरा साथ दिया है। सर्वप्रथम मैं श्री एन.रंगाचारी, वित्तीय सलाहकार, आन्ध्र प्रदेश सरकार हैदराबाद का आभार प्रकट करता हूँ जो सदैव मेरी प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। श्री पी.पी. पारीख, पार्टनर एस. भंडारी कम्पनी चाटर्ड एकाउटेंट्स, जयपुर तथा अन्य बंधुओं का भी मै हृदय से आभार प्रकट करता हूँ जिनके विज्ञापन इस पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं। कुछ मित्रों एवं शुभचिंतकों ने इस ग्रंथ के प्रकाशन के लिए यथा–योग्य आर्थिक सहयोग देकर, संस्थान के प्रति अपनी रुचि दिखाई है, संस्थान उनके प्रति भी आभार प्रगट करता है।

"कर्मण्ये वाधिकारस्ते" को ध्यान में रखते हुए आप भी अपने कार्यों में जुटे रहें, यही मेरा आपसे निवेदन है तथा ब्रज संस्कृति एवं विकास संस्थान के कार्यक्रमों में भाग लेकर ब्रज की संस्कृति एवं कला के प्रचार एवं प्रसार में अपना सहयोग देते रहें, यही आपसे अपील है।

जै जै श्री राधे।

नई दिल्ली फरवरी २०-२००४ *प्रो० (डा०) राम नारायण गोयल*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होली : आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक चिन्तन

–पूज्य कार्ष्णि स्वामी श्री गुरुशरणानन्द जी महाराज

होली आनन्द का आह्लाद का महोत्सव है। विश्व के कई देशों में इसे भिन्न–भिन्न रूपों में मनाया जाता है। होली पर्व मनाने के कई सन्दर्भ प्रस्तुत किए जाते हैं। मनोवैज्ञानिक इसे कुण्ठाओं की निवृत्ति का पर्व मानते हैं। मनुष्य अपनी दबी हुई कुण्ठाओं को इस दिन निःसकोच प्रकट करता है, फिर भी कोई बुरा नहीं मानता। प्रसिद्ध यूनानी विचारक ऐरिस्टोटल का CATHARSIS सिद्धान्त भी इसी विचार का प्रतिपादन करता है। कृषक इसे लहलहाती फसल कटने का आनन्द उल्लास मानते हैं। सामाजिक जन इसे जन–समाज की ऊँच नींच की दीवार को तोडने वाला होली पर्व मानते है– इस दिन कोई भी किसी को कुछ भी कह सकता है, कर सकता है, क्योंकि हम सभी को मालूम है आज के दिन **"बुरा न मानो होली है"**। भगवदीय जन इसे बुराई के ऊपर भलाई की विजय का पर्व मानते हैं। श्री प्रह्लाद जी भलाई के प्रतीक हैं तथा होलिका– जो हिरण्यकशिपु (जिसका पलंग सोने का है) की बहिन है–विलासिता, अनाचरपूर्वक संचय का प्रतीक है। प्रातीतिक दुःसाधन युक्त होने पर भी दुःसाधनों का आवरण धारण करने पर भी होलिका अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर पाई और अग्नि उसे भस्मसात कर गई जबकि प्रातीतिक रूप से निस्साधन, निरावरण प्रह्लाद भगवदाश्रय से सुरक्षित बच जाते हैं। **"हिंसः स्वपापेन विहिंसितः खलः-साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते।"** बुराइयों की, कटुताओं की, वैमनस्य की, दुर्भावों की होली जलाओ और प्रेम का, सद्भाव, का सदाचार का रंग सब पर बरसाओ।

ब्रज की होली तो ब्रज के समान जगत से अनूठी होती है। यहाँ प्रिया–प्रियतम अपने सहचरी–सहचर वृन्द के साथ परस्पर होली खेलते हैं। सभी सहचर–सहचरी वृन्द जीवों के प्रतीक हैं। श्री राधा रानी उन पर रंग बरसाती हैं। **रञ्जते अनेन-इति रंगः"** इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिससे तन मन रंग जाएँ उसे रंग कहते है।

"रञ्जनम् रागः" श्री कृष्णचन्द्र विषयक राधारानी का जो दिव्यातिदिव्य अनुराग है, उसी रंग को राधारानी सभी पर बरसाती हैं। सभी को श्रीकृष्ण विषयक प्रीति से आप्लावित कर देती हैं आप्यायित कर देती हैं। श्रीकृष्णचन्द्र भी अपने राधारानी राग को श्री राधारानी विषयक प्रीति को ही सब पर बरसाते है। दोनों दिव्य युगल एक दूसरे की प्रीति के दिव्यातिदिव्य रंग को इतना बरसाते हैं कि सम्पूर्ण प्रपंच इस दिव्य अनुराग से अनुरंजित हो जाता है।

"उड़त गुलाल लाल भयौ अम्बर" इतना लाल गुलाल बरसा कि अम्बर अर्थात् आकाश भी लाल हो गया। आकाश उपलक्षण है समस्त प्रपंच का। आकाश तत्व से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही अन्य तत्व क्रमशः वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी प्रकट हुए हैं। इन्हीं पाँचों तत्वों के सम्मिश्रण से, पञ्चीकृत तत्वों के संयोग से ही तो सब जड़ चेतन दृश्यमान प्रपंच सृष्ट होता है। आकाश के रंग जाने का तात्पर्य है सम्पूर्ण दृश्य प्रपंच श्री कृष्ण प्रेम से, श्री राधारानी के प्रेम से आप्यायित हो गया, दिव्य हो गया, राधाकृष्ण प्रेममय हो गया भगवती के उपासकों की दृष्टि से भगवती पराम्बा हिरण्यवर्णा हैं। जगज्जननी का हिरण्यवर्ण–लाल रंग उनकी करुणा का प्रतीक है। पराम्बा भगवती की जीव विषयक यह असीम करुणा उन्हें आर्द्र बनाती है। उसी आर्द्रता से वह समस्त जीवों को तृप्त करती है। शैव दर्शन के अनुसार लौहित्य (लालिमा) भगवान् का स्वरूप है। "लौहित्यमस्य–विमर्शः। अखण्ड बोध में लौहित्य है विमर्श। सजातीय–विजातीय–स्वगत–भेद शून्य परमतत्व है, प्रकाशात्मक शिव स्वरूप है। उनमें जो विमर्श आया है वही है लौहित्य। लौहित्य का तात्पर्य है–सविशेष ज्ञानः सम्पूर्ण प्रपंच का विभिन्न विशेषणों सहित घट ज्ञान, पट ज्ञान आदि रूपों में (सविशेष) ज्ञान।

परमात्मा का आनन्दमय स्वरूप प्रेममय है। भगवान् ने जीवों को संसार में भेजने के पूर्व उन सबको 'प्रेम' के रूप में एक सुदृढ़ संबल प्रदान किया। जीव संसार में कर्मयोग के अनुरूप चाहे जिस योनि में जाए, परमात्मा अपने प्रेममय रूप में उसके हृदय में अवश्य ही विद्यमान रहते है। कुटिल से कुटिल, क्रूर से क्रूर सर्प, राक्षस, सिंह आदि भी अपने परिवार, पत्नी पुत्रादि से प्रेम रखते हैं। कम से कम अपने आप से तो प्रेम सबका होता ही है। **आत्मनस्तु कामायं सर्व प्रियं भवति।**" इसलिये इस प्रपंच में ऐसा कोई जीव नहीं है जो 'प्रेम' विहीन हो, प्रेम रहित हो। जीव ही नहीं, चेतन की नहीं वरन् जड़ प्रतीत होने वाले पदार्थो में भी परस्पर एक सुदृढ़ बन्धन होता है। हर परमाणु का जगत के अन्य सभी परमाणुओं से एक आकर्षण होता है। इसे भौतिक वैज्ञानिक भी स्वीकार करते है। परमाणु कें अन्तर्गत भी इलैक्ट्रॉन और प्रोट्रॉन के बीच भी एक बन्धन है, आकर्षण है, सम्बन्ध है, जिसके कारण इलैक्ट्रॉन प्रोट्रॉन के चतुर्दिक अनन्त काल से अनन्त काल तक एक कक्षा विशेष में निरन्तर चक्कर लगाया करते हैं। दृश्यमान संसार के सभी ग्रह उपग्रह सहित सभी आकाश गंगाएँ भी एक सुदृढ़ बन्धन से बंधी होने के कारण ही तो अनन्त आकाश में सधी टँगी हुई है। जब इनमें टकराहट होती है तो इसका भी कारण दृढ़ बन्धन ही है। इस बन्धन का, इस स्नेह का एक मात्र कारण परमात्मा ही है। परमात्मा ही इस सम्पूर्ण प्रपंच का उपादान (और निमित्त) कारण है जैसे मिट्टी के सभी पात्रों में मिट्टी कारण रूप से अनुस्यूत है उसी प्रकार इस सम्पूर्ण प्रपंच में प्रेम परमात्मा भी सब में कारण रूप से अनुस्यूत है। अतएव सम्पूर्ण प्रपंच, सम्पूर्ण सृष्टि प्रेममय ही है। यह जगत प्रेम का ही परिणाम–उल्लास, विलास–विकास है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनन्त जन्मो के संचित दुष्कर्मों के परिणाम से, अविद्या के आवरण से जीव अपने इस प्रेममय स्वरूप को, आनन्दमय स्वरूप को भूल गया है। वह अपने आपको दुःखमय विषादमय, जड़तापन्न अनुभव करने लगा है। अपने सहजरूप का विस्मरण ही जीव के दुख का, बन्धन का कारण है। जीव जब भवसागर में डूबने लगे तो इस 'प्रेम' के दृढ़ अवलम्ब का आश्रय कर पुनः अपने प्रेममय–आनन्द–बहममय रूप को प्राप्त कर सकता है। यह प्रेम का दृढ़ सम्बल जीव को परमात्मा से युक्त कर सकता है–यह जीवात्मा–परमात्मा के योग का परम साधन है।

प्रेम का प्रभाव विलक्षण है। जिसके हृदय में प्रेम प्रतिष्ठित है उसके समीप्य से क्रूरतम, कुटिलतम व्यक्ति भी प्रेममय हो जाता है, उसका कौटिल्य, उसका क्रूरता का भाव अविभूत हो जाता हैं होली के दिन आपस की बड़ी से बड़ी दुश्मनी और वैमनस्य को भुलाकर लोग बड़े प्रेम से परस्पर रंग डाल कर गले मिलते हैं। यह रंग प्रेम का ही तो रंग है। आज के दिन जब भी व्यक्ति बाहर निकलता है उसकी आंखों में प्रेम का रंग चढ़ा होता है। वह यह नहीं देखता कि सामने आने वाला व्यक्ति छोटा है या बड़ा, गरीब है या अमीर, कुलीन है या अधम, शत्रु है या मित्र। वह सबको भेदभाव से रहित होकर गले लगाता है– रंग में सरोबार कर देता हैं आज के दिन तो धर्मशास्त्र की मर्यादा के अनुसार भी स्वपच को भी स्पर्श करने का, गले लगाने का विधान है। सभी भेदभावों को भुलाकर प्रेम के उल्लास–विलास के महासागर में डूब जाने को है– एक अखण्ड कृष्णात्म भाव– ब्रह्मात्व भाव या युगलात्म भाव प्रेमाभेदत्व भाव की अपरोक्षानुभूति का अवसर ही होली है।

अनन्त ब्रह्माण्ड नायक, सर्वात्मा, सर्वाधिष्ठान–आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र और उनकी नित्याभिन्न आह्लादिनी शक्ति श्री राधा रानी पर–प्रेमात्मक हैं। वे ही प्रिया प्रियतम सर्व रूपों में विलसित हो रहे है। श्रीकृष्ण के साथ ग्वाल बाल तथा श्री राधारानी के साथ उनकी सखी सहचरी वृन्द के रूप में प्रेमतत्व ही क्रीड़ा कर रहा है। जो भी उनके सम्पर्क में आता है, वह प्रेममय हो जाता है। जैसे–अग्नि सभी काष्ठ खण्डों मे होती है–बिना अग्नि के कोई काष्ठ खण्ड नहीं है– किन्तु उनमें अग्नि प्रकट करने के लिये उनका सम्बन्ध उन काष्ठ खण्डों से कर देते हैं जिनमें अग्नि प्रज्ज्वलित और प्रकट है। जैसे अव्यक्त अग्नि वाले काष्ठ का व्यक्त अग्नि वाले काष्ठ से सम्बन्ध जुड़ते ही उसमें अग्नि का प्राकट्य हो जाता है, उसी प्राकर श्री श्यामसुंदर और उनकी प्राणेश्वरी श्री राधारानी के सम्पर्क मात्र से सभी आत्माएँ प्रेममय हो जाती हैं। शुद्ध चिन्मय प्रेमरूप हो जाती है, रँग जाती हैं। सभी भौतिक–सांसारिक पदार्थ भगवत् स्पर्श मात्र से भगवत्स्वरूप हो जाते हैं–चिन्मय हो जाते है, प्रेममय हो जाते हैं। इन दिव्य युगल के करकमल से युर्षित रंग जीव को अन्दर–बाहर से रंग देता हैं, श्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा कृष्ण श्री श्यामाश्याम–प्रिया–प्रियतम के परम अनुराग से अनुरंजित कर देता हैं जीव दिव्य–चिन्मय–प्रेममय हो जाता है। इन प्रेममय श्याम के रँग में रँगा हुआ अन्तःकरण जब आँख के रास्ते बाहर जाता है तो सभी वस्तुओं को श्याम के रँग मे रँग देता है। फलतः उसे सर्वत्र श्याम रूप का ही दर्शन होता है। अन्तःकरण जब कान के रास्ते बाहर जाता है तो वह सभी शब्दों को श्याम रूप में रँग देता है। अतः उसे श्याम शब्द का ही श्रवण होता है। तात्पर्य यह है कि श्याम रँग मे रँगा हुआ अन्तःकरण जिस–जिस इन्द्रिय के माध्यम से बाहर जाता है–वह उन इन्द्रियों के विषयों को श्याम रूप बना देता है। ऐसी स्थिति में उसे श्याम के अतिरिक्त न तो कुछ दिखता है, न सुनाई देता है, और न ही अनुभव होता है। जैसे हरा चश्मा लगाने से सारा संसार हरा ही हरा दिखाई देता है उसी प्रकार हमारा अन्तःकरण भी जब श्याम रँग मे रँग जाता है तो सम्पूर्ण संसार केवल श्याम रूप में ही हमारे प्रति स्फुटित होता है। ऐसा अन्तःकरण जिसका स्पर्श करेगा उसे भी श्याममय बना देगा फिर तो ऐसा अनुभव होगा कि संसार में दूसरा रूप नहीं है, दूसरा शब्द नहीं है, दूसरी गन्ध नहीं है, दूसरा रस नहीं है,केवल श्याम रूप, श्याम गन्ध, श्याम रस ही सर्वत्र विकीर्ण है सर्वत्र श्याम की छटा ही विलसित हो रही है। श्याम भाव से भवित चित्त में दिन रात श्याम का ही चिन्तन होगा। उसकी सभी चेष्टाएँ श्याम के लिये, श्याम के द्वारा श्याम में ही होने लगेंगी। श्याम प्रेम मे समस्त प्रपंच का लय हो जायेगा। सम्पूर्ण जीवन श्याममय हो जाएगा।

होली केवल तन को ही नहीं, हमारे अम्बर को, हमारे अन्तर को भी अनुरंजित करे। हमारे अन्तःकरण श्यामा–श्याम के, प्रिया–प्रियतम के प्रेम से आप्यायित हो जाएँ, यह कामना लेकर बरसाने में श्री वृषभानु जी की ड्योढ़ी में चलें जहाँ प्रिया–प्रियतम परस्पर तथा सखा सहचरी वृन्द परस्पर प्रीति के रँग बरसा रहे हैं।

"आज बिरज में होरी रे रसिया।" ❐

–श्री उदासीन कार्ष्णि आश्रम (महावन), मथुरा
(साभार : कार्ष्णि–कलाप)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय संस्कृति में उत्सव का अर्थ

–लक्ष्मीकांत वर्मा

यदि प्रत्येक भारतीय पंचाग के अनुसार अपना दैनंदनीय कार्यक्रम बनाए तो पता चलेगा कि उसके जीवन का प्रत्येक दिन एक उत्सव के रूप में अवतरित होता है। इसी क्रम में पर्व आते हैं। उत्सव और पर्व में अन्तर इतना है कि उत्सव हम जब चाहे मना लें, किन्तु पर्व, काल–चक्र के अनुसार निश्चित अवधि के बाद आते हैं और उनका संबंध प्रायः तीर्थों से होता है। लेकिन उत्सव तो प्रत्येक घर की सुख समृद्धि और आंनद को व्यक्त करता है। खान, पान रहन–सहन एक दूसरे से मिलना–जुलना, परिवार–कुटुम्ब का एकत्र होना और उत्सव के अवसर पर किसी देवता के सान्निध्य में हर्ष उल्लास मनाना, हमारे जीवन का अविभाज्य अंग है। आज भी हमारी ग्रामीण संस्कृति इन्हीं उत्सवों में सराबोर है। वसन्त पंचमी के दिन जहाँ खेतों में लहलहाते हुए सरसों के पीले फूल सारी धरती को अपने रंग में डुबो देते है वहीं हम वसन्त के आगमन पर किसी नदी के किनारे स्नान करते हैं। सरस्वती के सान्निध्य में पूजा करते है। वसन्ती कपड़ा पहनते है और इस तलाश में निकलते हैं कि कहीं किसी अमराई में हमें आम के बौरों के दर्शन हो जाएँ और कोयल की आवाज सुनाई पडे। मुझे याद है अपने बचपन में आम के बौर की तलाश करते हुए हम अपने साथियों के साथ अपने ही गाँव का नहीं बल्कि आसपास के गाँव का भी चक्कर काटते थे। इसी प्रकार विजय दशमी के दिन नीलकंठ को देखने के लिये कान में जई की पत्तियाँ खोंसे एक जगह से दूसरी जगह ताल पोखर के आसपास नीलकंठ की तलाश में निकलते थे। इन उत्सवों में हमेशा एक अन्तरंग सम्बन्ध स्थानकी (इकॉलौजी) का रहता था।

प्रत्येक महीने में तीस दिन होते है और प्रत्येक सप्ताह के सभी दिनों को एक गृह एक इष्ट और एक पूजा का विधान मिलेगा। इस प्रकार साल का प्रत्येक दिन हम किसी न किसी रूप में उत्सव के साथ जीते हैं। भले ही आज इस परम्परा का लोप हो गया है, किन्तु कुलीन घरों में आज भी इनका कोई न कोई रूप नित्य मनाया जाता है। हमको तो इष्ट तब पता चलता है जब उस उत्सव से सम्बन्धित दिन हमें भोजन के साथ कोई नया व्यंजन मिलता है।

गहराई से सोचने पर पता चलता है कि यह उत्सव प्राकृतिक नियमों और प्रकृति की सानुकूलता को प्राप्त करने के लिए निरन्तर मनाए जाते हैं। भारतीय जीवन न तो कभी अतिवादी रहा है और लाख चाहने पर भी न कभी अतिवादी होगा। भारतीय जीवन का मूल तत्व संतुलन है और यह संतुलन तभी स्थापित हो सकता है जब हमारा अंतर्मन शान्त और प्रसन्न रहे, साथ ही वाह्य जगत में भी शान्ति और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संतुलन बना रहे। ये सारे पर्व और उत्सव इसी संतुलन, शान्ति और आनन्द की निरंतरता के लिये मनाए जाते हैं। परिवर्तन को भी संक्रान्ति के रूप में लेते हैं चाहे ऋतु–चक्र हो या जीवन–चक्र हो। दोनों में हम संतुलन स्थापित करने के लिये और उपद्रव से बचने के लिये अनेक प्रकार के अनुष्ठान, यज्ञ और प्रयास करते हैं। आयुर्वेद में उपद्रव को एक ऐसा लक्षण माना गया है जो हमारे जीवन को असंतुलित बनाता है। इस उपद्रव की परवाह न करने से यह किसी बड़े रोग रूप का लेता है। चरक ने अपनी चरक संहिता में कहा है कि संक्रान्ति काल अर्थात ऋतु–चक्र के क्रम में वह सन्धि रेखा है जहाँ से एक ऋतु विदा होती है और दूसरी ऋतु आती है। यह परिवर्तन ही उपद्रव का कारण और इससे बचने के लिये अनेक उपाय बताए गए है। आयुर्वेद प्रकृति एवं स्थानिकी में संतुलन स्थापित करने का एक विस्तृत शास्त्र भी प्रस्तुत करता है। प्राकृतिक संतुलन के लिये हमारी पूरी परम्परा कृतसंकल्प है, किन्तु हम यह संतुलन भयभीत होकर नहीं स्थापित करते और न हम यह मानते है कि हमारी यह मनुष्य योनि किसी अभिशाप का परिणाम है। सेमिटिक संस्कृति में मनुष्य स्वर्ग से निकाला गया अभिशप्त प्राणी है। हमारी भारतीय संस्कृति हमें यह निरन्तर चेतावनी देती है कि हम इस पृथ्वी पर उस परम–सत्ता के अंश रूप में अवतरित हुए हैं जो सृष्टि के गर्भ में है और हम उस सत्ता के अंश हैं इसलिए हम अभिशप्त नहीं बल्कि इस सूक्ष्म रूप में वे सभी तत्व सगुण रुप से हममें मौजूद है जो कि विश्व परम सत्ता में हैं। उस परम सत्ता का स्वरूप सत्–चित्–आनन्दमय है। इसलिए मनुष्य मात्र का जन्म उस सत्–चित्–आनन्दमय के अंश के साथ हुआ। आनन्द से जन्मे हुए मनुष्य में आनन्दमय जीवन बिताने और सत्–चित् में संतुलन स्थापित करते रहने की एक मूल प्रवृत्ति है। इसीलिए भारतीय जीवन में अभिशप्त होने की कोई अवधारणा नहीं है। न ही यह अवधारणा है कि हम स्वर्ग से निर्वासित प्राणी हैं और अभिशप्त होने के नाते भयभीत होकर जीवन बिताने के लिए विवश हैं। पूरी भारतीय संस्कृति भय मुक्त संस्कृति है। इसमें भय का कोई स्थान नहीं है। इसलिए वह आनन्द से निःसत होकर आनन्द में ही पर्यावसित होती है। इस अवधारणा में 'उत्सव' अपने उस मूल को जानने पहचानने उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने और जीवन तथा जीवन के समस्त तत्वों के साथ समरस होने का प्रयास है। वैसे भी 'उत्स' का मूल अर्थ है स्रोत, सोता या वह मूल स्थान जहाँ से कोई वस्तु जैसे जल स्रवित होता है। इसीलिए उत्स का दूसरा भावार्थ है गति, प्रवाह, इच्छा और उत्साह उदात्त भाव। प्रस्तुत अर्थो को देखते हुए 'उत्सव' का अर्थ है अपने मूल से जोड़ने की चेष्टा। 'उत्सव' का अर्थ है कि आदिम स्रोत की स्मृति में आकांक्षित होना और चूँकि उत्सव में आकांक्षा भी होती है इसलिए इच्छा शक्ति को निरन्तर उत्साह वर्धित करने का नित्य–यज्ञ उत्सव है। उत्सव का एक कोशीय अर्थ, क्रोध और आवेश भी हैं। किन्तु यह क्रोध और आवेश भी सात्विक होगा क्योंकि लक्ष्य है, मूल स्रोत से जोड़ना या उस आनन्द को अपने में लोक–जीवन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निरन्तर प्रकट करते रहना जिसके अंश के रूप में हम इस जगत में विद्यमान है। यही कारण है कि हमारे दर्शन में मृत्यु कोई आतंकित करने वाली घटना नहीं है। मृत्यु का अर्थ है जहाँ से, जिरा स्रोत से हम आए हैं उस स्रोत मे मिल जाना यानी आनन्द से परमानन्द की स्थिति मे जाना। इसी जीवन–दर्शन के कारण हम जीवन की त्रासदी को भी नहीं मानते। दुखान्तक होना अपने आदिम स्रोत और परम लक्ष्य को विस्मृत कर देने के कारण अपने को ही भूल जाना है। इसलिए भारतीय जीवन–दर्शन में ऐसी स्थितियों को अपवाद माना गया है। इसी के साथ यह भी कहा गया है कि यह सम्पूर्ण रसमात्र है और मधुर सिद्ध या खटरस की अनुभूति इसी के रस भेद हैं। इनमें रस का लोप नहीं होता। सौन्दर्य दृष्टि में सुन्दर वह है जो प्रत्येक क्षण नया लगे। यानी बीते हुए क्षण से जो प्रक्षेपण सौन्दर्य पर हो वह उसे और भी सुन्दर बनाए। इसी सुन्दरता से हमारा आपका और पूरी सृष्टि का आनन्दवर्धन होता है। इसलिए उत्सव का एक अर्थ यह भी है कि प्रतिक्षण सौन्दर्य के नवीन आयामों के साथ अपने जीवन को जोड़कर आनन्दित और उल्लसित होना।

यदि हम गौर से देखें तो पाएँगे कि उत्सव, प्रकृति में हो रहे परिवर्तन के अनुसार घर–परिवार, समाज, देश–धर्म मे निरन्तर एक स्थिति से दूसरी स्थिति तक यात्रा के उल्लास का परिचायक है। प्रकृति में जो भी परिवर्तन होता है उसके प्रति भारतीय मानस इतना जागरूक है कि वह उसे उपेक्षित नहीं जाने देता। इसीलिए प्राकृतिक परिवर्तन को जहाँ पूरे विश्व में चार ऋतुओं में विभाजित किया गया है वहीं भारतीय मनीषियों ने इसे छह ऋतुओं में विभाजित किया है। प्रत्येक संक्राति को हमने एक पर्व के रूप मे धन्यवाद कृतज्ञता और आनन्द का द्योतक माना है। यह पर्व भी उत्सव के रूप में ही मनाने की परम्परा हैं क्योंकि उदार प्रकृति हमें जो कुछ भी नए अन्न, फल, फूल, वनस्पति औषधि आदि ऋतुओं के क्रम में देती रहती है उसको स्वीकार करने के साथ हम उत्सव मनाकर प्रकृति और ईश्वर के प्रति अपनी कृतज्ञता का ज्ञापन करते हैं। यही कारण है कि यज्ञ भी हमारे यहाँ दो रूपों में किया जाता है और नित्य यज्ञ को बहुत महत्व दिया गया है यह नित्य यज्ञ प्रकृति और पर्यावरण में क्षण प्रतिक्षण सुन्दर लगने वाले आयामों के प्रति कृतज्ञता और आभार के रूप में मनाया जाता है।

भारतीय उत्सव का जो भी स्वरूप है वह प्रकृति के सान्निध्य और उसकी अनुकम्पा पर आधारित है। प्रकृति से हट कर या प्राकृतिक नियमों के विपरीत जीवन में कोई भी उत्सव नहीं मनाया जाता। वसन्ततोत्सव, शरद महोत्सव कौमुदी महोत्सव वैसाखी और इसी प्रकार समस्त उत्सवों का विधान प्राकृतिक नियमों के अनुकूल और प्राकृति के सान्निध्य में ही होता है। प्रकृति की अनुकम्पा के रूप में हमें फल फूल अनाज आदि मिलता है उसको ग्रहण करने के पहले कैसे प्रकृति के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की जाय, और कैसे जीवन में ग्राम देवता से लेकर कुल देवता, जनपद और गण के अधिष्ठाता को आहूत किया जाय इस सबका विस्तृत विधान है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में उत्सवों की अभिव्यक्ति छोटे–छोटे तीज त्योहारों में देखी जा सकती है। जनजातियों में यह परम्परा अब भी सुरक्षित है। एक मिट्टी के घड़े के ऊपर कसोरे में अक्ष, नये आम का पल्लव, उस पर एक जलता हुआ दीपक, एक रहस्य सुखद सुन्दर और सरल रूप हमारे समस्त सौन्दर्य भाव और उससे रिसती रागात्मक अनुभूति जागृत करता है। इस मर्म को तो वही जान सकता है जिसने इसकी झलकियाँ देखी हों।

इन उत्सवों मे वैभव प्रदर्शन या कर्मकांड का पाखंड नहीं होता। चावल और हल्दी के लेप से घर की दीवारों पर थाप देने में कई बार या अन्य उत्सवों पर भित्ति–चित्रों पर अल्पनाओं की सरल वक्र रेखाओं से अपने भावों की रसमयता को व्यक्त करता इतना सरल किन्तु मार्मिक होता है कि बरबस ही मन को छू लेता हैं। इस प्रकार का उत्सव हमारे जीवन में प्रतिदिन मनाया जाता है। दक्षिण भारत में तो सुबह शाम गेहूँ के आटे से अल्पनाएँ बनाकर देवताओं के आने का मार्ग प्रशस्त किया जाता है। रोज़ ही किसी न किसी रूप में इन अल्पनाओं के माध्यम से हम अपनी रागात्मक अनुभूतियों को शब्द और अर्थ दोनों प्रदान करते हैं। इसी भाषा के आधार पर कुश चुनकर लाने वाले को हमने कुशल कह दिया। समिधा जुटाने वाले लोगों को उत्सव में शामिल करने के लिए हमने समिध की संज्ञा दी, और अपने गान और नृत्य को एक नैसर्गिक अभिव्यक्ति मानकर हमने देवालयों और देवस्थानों से जोड़ दिया। इस तरह हमने प्रत्येक उत्सव को प्रकृति और देव और मानवीय संदेनाओं के बीच तारतम्य स्थापित करके एक उत्स की भावना से निरन्तर आल्हादित होने की प्रक्रिया अपनाई। उत्सव में पवित्रता भाव की है, साधन और माध्यम की नहीं। भारतीय साधना के उपादान भी ऐसे हैं जो गरीब से अमीर तक सब को सुलभ हैं। कुश से पवित्र हमने किसी दूसरी वस्तु को नहीं माना है। चाहे मांगलिक कार्य हो या श्राद्ध और अन्य कार्यक्रम हों। कुश ही एक मात्र ऐसा साधन है जिसका होना आवश्यक है। उसी प्रकार पलाश का पत्ता, दोना, पत्तल आदि ही यज्ञ से लेकर सामान्य से सामान्य उत्सव के मुख्य अंग हैं। हमारे उत्सवों की विशेषता यह है कि इसमें स्थानीय आनन्द को प्रमुखता दी गई है। प्रत्येक स्थान और प्रत्येक देश, प्रदेश में जो भी प्राकृतिक साधन हमें उपलब्ध हैं वे ही उत्सव के मुख्य अंग माने गए हैं। आम का पल्लव, जल, मंगल–घट मिट्टी के दिए ये तो पूरे देश में सामान्य रूप से पाए जाते हैं। इसी प्रकार कुश, दूर्वा, अक्षत, जौ आदि भी सामान्य रूप से सुलभ हैं। फूल और फल की विविधता होती है और ऋतु के अनुसार इनका प्रयोग उत्सव में किया जाता है। संसार में शायद ही ऐसा कोई समाज हो जिसमें उत्सवों की इतनी विशाल परम्परा इतनी समस्त विविधताओं के बावजूद सामान्य रूप से पूरे देश में निरन्तर और नित्य प्रति किसी न किसी रूप में मनायी जाती है। यही हमारी समृद्ध संस्कृति की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह एक विचित्र बात है कि पूरे भारतीय संस्कार में शोक मनाने को न तो कोई पर्व होता है और न कोई त्योहार। पितृ–पक्ष जैसे मृत–पूर्वजों को याद करने के अवसर को हमने श्राद्ध का रूप दिया। हम अपने पूर्वजों की स्मृति भी दुख या विषाद से आसक्त होकर नहीं करते। इसीलिए हमने उसका नाम श्रद्धा व्यक्त करने वाला श्राद्ध–पक्ष कहना उचित समझा है। इसमें भी जिस बात पर विशेष बल दिया गया है वह यह है कि पितृ–पक्ष के पन्द्रह दिनों में हम अपने पितरों को श्रद्धापूर्वक याद करें और उसकी विशिष्ट रुचियों के अनुसार रहने की चेष्टा करें। अपने विशिष्ट पितरों की तिथि पर अच्छा भोजन बनाना अपने बंधुजनों को खाना खिलाना और ऐसी चीजें बनाना जो उन विशिष्ट पूर्वजों को पंसद थीं पितृपक्ष का एक महत्वपूर्ण अंग है।

हम यह भूल जाते हैं कि भारतीय जीवन दर्शन में आनन्द की अवधारणा और अन्याय सांस्कृतिक अवधारणाओ में बहुत बड़ा अन्तर माना गया है। 'सुख' जब स्थूलत्व को त्याग कर सूक्ष्म रूप लेता है और आत्मिक क्षेत्र में प्रवेश करता है तब हम उसकी तुलना 'आनन्द' से कर सकते हैं किन्तु फिर भी वह आनन्द का पूर्ण रूप नहीं हो सकता। भौतिकता और नैसर्गिकता दोनों को समरस होकर जीने में जो अनुभव होता है उसे हम आनन्द की स्थिति कह सकते है।

आनन्द मे हम अपने स्थूल को आत्मा के सत् और चित् स्वरूप से जोड़ते हैं। योगी इस जुडने को 'परम–तत्व' की प्राप्ति मानता है। भक्त इसको भगवान की करुणा का स्वरूप मानता है। कर्मकांड प्रधान व्यक्ति इरो कर्म से प्राप्त तुष्टि मानता है। और सामान्य जन इसे लोक–परलोक के झिलमिले अनुभव और आलोक में अपनी और अपने बंधुजनों की भावनाओं को ऊर्ध्वगामी बनाता है। उत्सव निरन्तर आनन्द की ओर गतिशील होने की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। जहाँ उत्सव नहीं है वहाँ सुख की कल्पना तो की ही नहीं जा सकती। साथ ही आनन्द की कल्पना भी असंभव है। उत्सव का पार्थिव रूप अवश्य होता है, किन्तु उस पार्थिवता के स्थूलत्व में नैसर्गिकता और दैविक अनुकम्पा को प्राप्त करने की इच्छा प्रबल है। जन–जीवन जितना सरल होता है उतना ही सरल इसके उत्सव होते हैं और उतने ही सरल उसके अंग होते हैं। उत्सव मूलतः निरन्तर सुख से उबर कर उल्लास, उल्लास से ऊपर उठकर आह्लाद से भी ऊपर उठकर हर्ष और हर्ष से भी आगे बढ़कर आनन्द से भी परमानन्द तक पहुँचने का निरन्तर अभ्यास करते रहने की एक प्रक्रिया है। परमानन्द की अनुभूति तक पहुँचने के लिए आवश्यक है कि हम सुख और आनन्द के इस झिलमिले वातावरण को निरन्तर बनाए रखने की प्रक्रिया अपनाएँ। ☐

(साभार नवभारत टाइम्स)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होली का मूल आधार है सामाजिक व्यवस्था

–सत्येन्द्र प्रसाद सिंह

किसी समुदाय में प्रचलित रीति–रिवाज, परंपरा और विश्रास उस समुदाय की सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था की अभिव्यक्ति होते हैं। दूसरे शब्दों में, वे उस समाज के क्रियाकलापों का परिणाम होते है। यही कारण है कि समाज में आएँ परिवर्तनों के साथ–साथ रीति–रिवाजों, परंपराओं और विश्वासों में भी बदलाव आते रहते हैं। विभिन्न धर्मों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो चुका है कि उनके उद्‌भव और विकास का आधार समाज और अर्थव्यवस्था ही रहा है। एक कृषक समाज के धर्म का स्वरूप वही नहीं हो सकता, जो एक खानाबदोश समाज का होगा। संस्कृति के इन चिन्हों को उनके कर्मकांड़ों के माध्यम से बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। इन कर्मकांडों के द्वारा एक आदिम, कृषक समुदाय में विद्यमान मृत्यु और पुनर्जन्म संबंधी विचारों की अभिव्यक्ति होती है, जिनका उद्‌गम पेड़–पौधों के जीवन में देखा जाता है। होली पर्व का संबंध भी इन्हीं विचारों से युक्त कर्मकांडों से माना जाता है। अर्थात मृत्यु एवं पुन्नर्जन्म के अवसर पर जो कर्मकांड किए जाते हैं, उनकी बहुत –सी विशेषताएँ होली में देखी जाती हैं। पर आज होली ने अपनी ऐसी विशिष्ट पहचान बना ली है कि उसकी पहचान उक्त संदर्भ में आसान नहीं है। फिर होली से सम्बद्ध तथ्यों की व्याख्या में विद्वानों में मतैक्य का अभाव भी है। फिर भी उसका समाज से संबंध वैदिकोत्तर युग (६०० ई.पू.–३२३ ई.पू.) से ही सिद्ध है।

पहली मान्यता के अनुसार होली मृतक कर्मकांड को अभिव्यक्त करती हैं पर होली के अवसर पर मनाए जाने वाले आंनदोत्सव को देखते हुए इस विचार पर विश्वास करना कठिन है। क्योंकि मृतक संस्कार के अवसर पर शोक का वातावरण रहता है इस प्रश्न का समाधान मध्यकालीन धर्मशास्त्रकार हेमाद्रि द्वारा भविष्य पुराण से उद्‌धृत उस उपाख्यान से हो जाता है जिसमें 'ढोण्ढा' नाम की राक्षसी के मारे जाने की कथा है। उसके अनुसार वह बच्चों को दिन–रात डराया करती थी जो शिव से प्राप्त वरदान के कारण न तो देव, मानव आदि से मारी जा सकती थी और न ही अस्त्र–शस्त्र या जाड़ा या गर्मी या बरसात से मर सकती थी। वह क्रीड़ायुक्त बच्चों से ही मर सकती थी। यही कारण है कि राक्षसी को मारने के लिए फाल्गुन की पूर्णिमा को चुना गया, जब न तो सर्दी होती है और न गर्मी बल्कि शीत और ग्रीष्म ऋतु का संगम होता है। इसी प्रक्रिया में बच्चे लकड़ी के टुकड़े लेकर बाहर प्रसन्नतापूर्वक निकलते हैं, लकड़ियाँ एवं घास एकत्रित कर मंत्रोच्चारण के साथ उसमें आग लगाते हैं, अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं, प्रचलित भाषा में भद्दे एवं अश्लील गाने गाते हैं, तालियाँ बजाते हैं और शोरगुल करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह परंपरा किंचित् परिवर्तन और भिन्नता के साथ आज भी संपूर्ण भारत में पाई जाती है। बिहार और उत्तरप्रदेश में इसे 'होलिका दहन' और सम्मत–ज्वलन' कहा जाता है। बंगाल में 'होलिका–दहन' तो नहीं होता, पर उसी प्रकार की एक प्रथा –नेदोपोदा या मेदापोदा–प्रचलित है। इस अवसर पर बंगाल मे उच्चरित पद–बोलो हरि बोल–मृत शरीर को श्मशान–भूमि की ओर ले जाते समय ही बोला जाता है। होलिका–दहन उत्सवग्नि (बोन फायर) के समान है जो या तो किसी मृतक के दाह–क्रिया का प्रतीक है या वर्ष के समापन और नए वर्ष के आगमन का। 'सम्मत ज्वलन' में निहित 'सम्मत' शब्द 'संवत्' शब्द का तद्भव रूप है और जो इसी भाव को सूचित करता है। संपूर्ण विश्व में मृतक और अग्नि की लौ के बीच प्रत्यक्ष संबंध माना जाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि होलिका दहन के अवसर पर गाए जाने वाले अश्लील गीत राक्षसी को मारने की तरकीब का एक हिस्सा है। उसमें निहित प्रसन्नता के भाव को इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

दूसरी मान्यता के अनुसार होली पुनर्जन्म संबंधी कर्मकांड है। काफी पहले विलियम क्रूक (फॉक लोर, खंड २५) ने यह तथ्य उद्घटित किया था कि होली का त्यौहार जन्म संबंधी आदिम सेक्सुअल कर्मकांडों की स्वाभाविक परिणति है। जे.एच. हट्टन (कास्ट इन इंडिया) भी आदिम कृषक कर्मकांडों के संदर्भ में यह मानते है कि होली के कर्मकाडों में काम संबंधी विशेषताएँ प्रमुख है। इस अवसर पर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में गाए जाने वाले अश्लील गीत, लोगों की काम भावना की ही स्पष्ट अभिव्यक्ति करते है। इसमें समाज के सभी वर्ग और उम्र के लोग निःसकोच भाग लेते हैं। 'कामसूत्र' एवं 'भविष्योत्तर पुराण' इसे वसंत से सयुंक्त करते हैं। अतः यह उत्सव वर्ष के समापन के साथ–साथ नववर्ष के आरंभ का भी सूचक है। इतना ही नहीं यह वसंत कामप्रेममय लीलाओं का भी द्योतक है। इसीलिए प्राचीन काल में यह पर्व कहीं–कहीं वसंतोत्सव के रूप में मनाया जाता था। जब राजकुमारियाँ काम–देवता के सम्मान में नृत्य प्रस्तुत किया करती थीं। हेमाद्रि ने भी होलिका–दहन के दूसरे दिन चैत्र–प्रतिपदा पर सुंदरियों द्वारा काम–पूजा किए जाने का उल्लेख किया है। हालांकि आजकल होली में विभिन्न रंगों का उपयोग किया जाता है, पर प्राचीन काल से ही इसके लिए स्वीकृत रंग लाल ही है जो सगे–संबधियों, मित्रों इत्यादि के शरीर पर लगाया जाता है। यह लाल रंग जो खून का प्रतीक है सम्पूर्ण विश्व में धार्मिक एवं कर्मकाण्डीय दृष्टि से जीवन प्रदायक या नवीनीकरण की शक्ति के रूप मे समझा जाता है। पाषाण युग के कब्रिस्तानों से प्राप्त अस्थियाँ और मिस्र, मेसोपोटामिया तथा हड़प्पा से प्राप्त मातृदेवी की मूर्तियाँ भी लाल रँग से रँगी हुई हैं। इसी तरह शादियों में भी लाल रँग ही इस्तेमाल किया जाता है। इसका पूर्णिमा के दिन मनाया जाना भी इस दृष्टि से खास महत्व रखता है। प्राचीन काल से ही विश्व की विभिन्न सभ्यताओं में इसका संबंध पुनर्जन्म यानी नए जीवन से जोड़ा जाता रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार होली का वर्तमान स्वरूप मृत्यु एवं पुनर्जन्म की अवधारणा से युक्त आदिम कर्मकाडों का अवशेष है। धीर धीरे यह कर्मकांड कालक्रम से प्रकृति में निहित मृत्यु एव पुनर्जन्म की घटनाओं का प्रतीक बन गया। आज अपने वर्तमान रूप में यह जाड़े में एक वर्ष के अंत और बसंत में दूसरे वर्ष के जन्म का प्रतीक बन गया है। वस्तुतः संमपूर्ण विश्व में प्राकृतिक वर्ष का आरंभ वसंत से माना जाता है।

अंततः होली के सामाजिक आधार की व्याख्या भी आवश्यक है। आज होली हिन्दू समाज के सभी वर्गो और जातियों द्वारा मनाई जाती है। यह भ्रांत धारणा है कि पंक का प्रयोग आधुनिक काल की देन है। इस संबंध में 'वर्षकृत्यदीपक' के निम्न श्लोक द्रष्टव्य हैं–"प्रभाते विमले ह्यंगे भस्म च कारयेत्। सर्वांगे च ललाटे च क्रीडितव्यं पिशाचवत्।। सिन्दूरैः कुंकमैश्चैव धूलिभिर्धूसरो भवते्। गीत वाद्यं च नृत्यं च कुर्याद्रथ्योपसर्पणम्।।" इस पर्व की यह विशेषता वर्गों मे विभक्त प्राचीन भारतीय समाज का परिणाम है। अमीर अर्थात् उच्च वर्ग के लोग आसानी से रंगो का प्रयोग कर सकते थे,पर गरीबों अर्थात् निम्न वर्ण के लिए यह दुर्लभ था। अतः सर्वसुलभता और मुफ्त में उपलब्धता के कारण निम्नवर्णों ने पंक का आरंभ से ही इस्तेमाल किया और आज भी प्रमुखता से करते हैं इस अवसर पर गाए जाने वाले अश्लील गीतों से भी इसके आरंभिक निम्न वर्णीय आधार का ही संकेत मिलता है। जैसा कि कापालिक और कलामुख संप्रदाय के सामाजिक आधार में दर्शित होता है। जो भी हो, यह पर्व आज समाज के सभी वर्गो और जातियों द्वारा अत्यंत उल्लासपूर्वक मनाया जाता है और यह उनमें आपसी भाईचारा और प्रेम समृद्ध करने वाला है। ❐

(साभार : हिन्दुस्तान)

दरसन दै निकस अटा में से। दरसन दै,
तू है श्री वृषभान नंदिनी, ज्यों निकस्यो है चंद्र घटा मेंते।
कोटि रमा, सावित्री, भवानी, निकसी हैं तेरी अंग छटा मेंते।
'पुरषोत्तम' प्रभु यह रस चाख्यौ (जैसे) माखन निकस्यौ मठा मेंते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राचीन भारत में होली

–डॉ हरि सिंह पाल

हमारा देश एक उत्सव प्रिय राष्ट्र है और इसीलिए प्रत्येक ऋतु में एक न एक उत्सव मनाने की परम्परा चली आ रही है। किन्तु वसंत में तो उत्सवों का चरमोत्कर्ष मिलता है। होली का उत्सव हमारी मानसिक वृत्तियों के मुखर होने हेतु नियत किया गया है। इस दिन हमारी मर्यादित प्रकृति भी उन्मुक्त हो जाती है। आमोद–प्रमोद निर्बन्ध हो जाते हैं तथा संयम और शिष्टाचार की मर्यादा का उल्लघंन भी क्षम्य माना जाता है। व्यस्त व्यक्तियो का भी होली पर्व पर मनोविनोद हो जाता है।

होली का जो वर्तमान स्वरूप दिखाई पड़ता है वह सहस्त्रो वर्ष, प्राचीन है। भारत में अनेक प्रकार की उद्यान क्रीडाएँ प्राचीन काल में थीं वे इसी होलिकोत्सव की सहेलियां थी। पाणिनि का 'प्राचा क्रीड़ाएँ' (६, २, ७२) सूत्र इसका परिचायक है। 'वात्स्यायन' मुनि ने इन्हें देश–परम्परागत क्रीडाएँ कहा है। संस्कृत के महाकवियों ने इस महोत्सव के अन्तर्गत जिन क्रीडाओं की चर्चा की है वे मुख्यतः छः उत्सव हैं जो माघ शुक्लपंचमी से चैत्री पूर्णिमा तक मनाए जाते है।

(१) नवानेष्टि :- होली की अग्नि मे जौ या गेंहूँ की बालें भूनकर उन्हें 'यवाग्रयण' यज्ञ के प्रसाद के रूप में ग्रहण करना।

(२) अशोकोन्तसिका :- सुन्दरियों के पदाघात से अशोक का तथा उन्हीं की मुख मदिरा के सिंचन से वकुल का खिलना।

(३) पुष्प प्रचायिका :- 'काम' पूजा हेतु पुष्पों का चयन यानी अपने हाथ आई हुई शाखा से स्वयं फूल चुनना।

(४) बसंतोत्सव :- इसमें आम्र–मंजरी से कामदेव की अर्चना की जाती थी। पहले यह राष्ट्रीय महोत्सव था जिसमें नगर की समस्त अंगनाएँ भाग लेती थीं। हमारे मंत्र दृष्टा महर्षियों ने बसंत माधुरी की मधुमयता से आनन्द विभोर हो परमेश्वर से प्रार्थना के रूप में कहा था–मधुव्वाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्तवोषधी मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव रजः।मधुद्यौस्तु नः पिता। मधुमान्नो वनस्पतिमधुर्मा अस्तु सूर्यः माहवीर्गावो भवन्तु नः। अर्थात् हमारे लिए वायु मधु बनकर बहे, नदियाँ मधुक्षरण करें औषधि मधुमयी हों अर्थात भूमि का कण कण आकाश, वनस्पतियाँ सूर्य और हमारी गायें सभी मधुमय हो।

(५) होलिकोत्सव :- भविष्य पुराण में होलिकोत्सव का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अयं पंचदशी शुक्ला फाल्गुणस्य नराधिप।
शीत कालान्त सम्प्राप्तो प्रातर्मधु भविष्यति।
अभयं सर्वलोकानाम दीयतां पुरूषोत्तम।
यथा ह्यशंकिता लोका रमन्तिच हसन्ति च।।
नाना रंग मयैवस्त्रैः चन्दनागुरू मिश्रितैः।।
अबीर च गुलाल चमुखे ताम्बूल भक्षणम्।।

अर्थात राजन शीतकाल का अंत है फाल्गुनी पूर्णिमा के पश्चात मधुमास होगा। सभी को अभय दीजिए जिससे ये निर्भीक होकर हँसें और खेलें। रंग–विरंगे वस्त्र पहनकर चंदन, अबीर और गुलाल लगाकर पान चबाते हुए एक दूसरे पर रँग डालने के लिए पिचकारियाँ लेकर निकलें एक दूसरे को गालियाँ देकर हंसे स्त्रियाँ नाचें। जिसके मन में जो आए सो कहे। ऐसे शब्दों से तथा हवन करने से यह पापिनी ढूँढा (होलिका) नष्ट हो जाती है।

(६) उदकक्ष्वेडिका :- पिचकारियों द्वारा जल प्रक्षेप ही उदकक्ष्वेडिका है। यह क्रीड़ा 'नवान्नेष्टि' यज्ञ की अवभूत स्नान का स्मृति शेष ही जान पड़ती है। युधिष्ठिर के 'राजसूर्य यज्ञ की समाप्ति पर यज्ञान्त स्नान का श्रीमद्भागवत पुराण (१०–७५–१४.१५) में जो वर्णन मिलता है वही इस क्रीड़ा का मूलाधार है।

स्वलकृता नरानार्योवस्त्राभूषणाम्बरैः
विलिम्पन्त्यो ऽभिषिचन्त्यो विजहुः विविधैः रसैः।।
तैलगोरस गन्धोह हरिद्रा सान्द्र कुंकुभैः।
पुंभिर्लिप्ताः प्रलिम्पन्त्यो विजहुः वारियाषिताः।
ता देवरानुत सखी निसुषिचर्हतीभिः

अर्थात् गंध माला भूषण तथा वस्त्रों से अलंकृत पुरुष और स्त्रियां गँगा में अवभूथ–स्नान के लिए गईं। वहां वे तेल गोरस सुगंधित जल, हल्दी और गहरे रंग की कुंकुम आदि से एक दूसरे को रँगने लगीं। वे पिचकारियों से अपने देवरो और अपने प्रियजनों को भिगो रही थीं। ❐

–आकाशवाणी, नई दिल्ली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फागुन के दिन चार

–गुणाकर मुले

होली या होलिका अपने मूल रूप मे बसन्तागमन और नई फसल का पर्व है। भारतीय परंपरा में ऋतुएँ छह मानी गई हैं। इनमें से दो–दो ऋतुओं में मौसम प्रायः एक–सा ही रहता है इसलिए मुख्य मौसम तीन ही हैं–गर्मी, वर्षा और शीत।

प्राचीन काल में हमारे देश में इन तीन प्रमुख ऋतुओं के संधिकाल में **चातुर्मास्य यज्ञ** या **इष्टि** करने की प्रथा रही है। पर्व कालवाचक शब्द है, और इसका एक अर्थ है संधि मौसमों के संधिकाल में चातुर्मास्य योग करने का श्रौतग्रंथों में विधान है। फाल्गुन की पूर्णिमा के एक दिन पूर्व चातुर्मास्य के निमित्त जो इष्टि की जीत थी उसका नाम वैश्रवदेव था। दूसरे दिन से गरमी का आरंभ माना जाता था। प्राचीन काल में नए वर्ष का आरंभ भी उसी दिन से माना जाता था।

आज चैत्र शुक्ल–प्रतिपदा से वर्षारंभ माना जाता है, पर लगता है कि पुराने जमाने मे चैत्र कृष्ण–प्रतिपदा भी वर्षारंभ की तिथि थी। प्राचीन ग्रंथों में अमांत और पूर्णिमांत, दोनों ही प्रकार के मासों का प्रचलन देखने को मिलता है कुछ ब्राह्मण ग्रंथों में पूर्णिमा को संवत्सर का मुख कहा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि चैत्र कृष्ण–प्रतिपदा को वर्षारंभ की तिथि माना जाता था।

कई प्राचीन सभ्यताओं में (हमारे देश में भी) बीते वर्ष को मरा हुआ मानकर जला देने की प्रथा रही है। देश के कुछ प्रांतों में इस प्रथा के अवशेष आज भी देखने को मिलते हैं। होली के दिन सामूहिक अग्नि–प्रज्वलन इसी विचार से होता हैं किसी समय मकर–सक्रांति के दिन से वर्षारंभ मानने की प्रथा रही होगी, इसलिए आज भी पंजाब में लोढ़ी के एक दिन पहले होली की तरह अग्नि जलाने की प्रथा है। इसलिए फाल्गुन–पूर्णिमा के एक दिन पहले होली जलाने का एक परंपरागत अर्थ यह भी है कि बीता साल या मौसम मर गया है और हमने जला डाला है।

होली दरअसल किसानों की मेहनत के फल का, नया अन्न पैदा होने का त्यौहार है। नया अन्न सर्वप्रथम देवताओं को आर्पित करने की हमारे देश में प्राचीन काल से ही परम्परा रही है। गीता कहती है : **तैर्दत्तानप्रदायौभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एवं सः**। अर्थात देवताओं को भेंट चढ़ाए बिना जो स्वयं खा लेता है, वह चोर है। इसलिए जब–जब नया अन्न पैदा होता था तब–तब एक इष्टि (यज्ञ) होती थी। श्रौतसूत्रों में इस कृत्य को **आग्रयण इष्टि** कहा गया है। मनु ने इसे नवसस्येष्टि कहा है। नवान्नेष्टि का यह कृत्य साल में तीन बार किया जाता था – भदई धान पैदा होने के समय भाद्रपद में बाजरा आदि पैदा होने के समय कार्तिक मार्गशीर्ष में, और जौ, गेहूँ आदि के समय फाल्गुन या चैत्र में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार फाल्गुनी या होली–पूर्णिमा परम्परा से नवान्नेष्टि का भी पर्व है। इस प्राचीन परम्परा के चिह्न आज की होली में भी देखने को मिलते हैं। आज भी होली की ज्वाला में जौ, गेहूँ आदि की बालें सेंक ली जाती हैं।

होलिका या **होलाका** एक परंपरागत उत्सव भी है। शिष्टों द्वारा सदाचार के अनुसार मनाए जाने वाले उत्सवों को धर्म के रूप में ग्रहण किया जाता था। प्राचीन काल में ऐसे अनेक उत्सव प्रचलित थे। वैदिक काल मे ऐसा ही एक उत्सव था **इंद्रमह**, या इंद्रध्वज का उत्सव। **तैत्तिरीय-ब्राह्मण** में इंद्र को **शुनासिर** कहा गया है, यानी इंद्र कृषि कर्म का भी देवता था। पुराणों में कृषि–देवता इंद्र और गोरक्षक कृष्ण के बीच के संघर्ष के बारे में जानकारी मिलती है। पौराणिक कृष्ण ने पुराने इंद्रमह उत्सव के स्थान पर गिरियज्ञ की स्थापना की थी, तो इंद्र ने इसका कड़ा विरोध किया था।

संस्कृत साहित्य में स्पष्ट जानकारी मिलती है कि वसंत का समय प्राचीन भारत में उत्सवों का काल होता था। शीत के बाद वसंत का आगमन कडा आकर्षक और उन्मादक होता है। कालिदास ने अपनी सभी कृतियों में वसत का और वसंतोत्सवों का व्यापक वर्णन किया है। **ऋतुसंहार** में उन्होंने लिखा भी है:– **सर्वप्रिये चारुतरं वसंते** गीत–गोविंद में रसमय और उन्मादक वसंत का वर्णन प्रसिद्ध ही है।

पता चलता है कि फाल्गुन के आरंभ से लेकर चैत्र महीने तक वसंतोत्सब कई प्रकार से मनाए जाते थे। **वात्स्यायन** ने अपने **कामसूत्र** में भी अनेक उत्सवों की जानकारी दी है जैसे, कामसूत्र में **उदयकक्ष्येडिका** नामक एक विनोदोत्सवका जिक्र है। पिचकारियों से जल भर कर प्रियजनों को सराबोर कर देने की प्रथा के रूप में यह उत्सव आज भी होली के रूप में जीवित हैं। कामसूत्र में होलिका नामक उत्सव का भी उल्लेख है।

वसंत में मनाए जानेवाले उत्सवों में दो सबसे ज्यादा प्रसिद्ध रहे हैं: मदनोत्सव और सुवसंतक। वसंतावतार के दिन को सुवसंतक कहते थे। आज के हिसाब से यह वसंत पंचमी का दिन है। **ऋतुसंहार** में कालिदास द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार इस दिन पुराने गर्म कपड़ो का त्याग करके हल्की लाल साडियाँ पहनी जाती थीं, और कोई–कोई कुसुम्भी दुकूल धारण करती थीं।

मदनोत्सव के दो रूप प्रचलित थे– एक धूम–धाम का और दूसरा कामदेव की पूजा का। हमारे शास्त्रों में वसंत को कामदेव का मित्र कहा गया है। प्राचीन काल में प्रेमोन्माद के प्रदर्शन का नाम था मदनोत्सव। मदनोत्सव कई दिनों तक मनाया जाता था। पुराणों से पता चलता है कि यह उत्सव चैत्र–शुक्ल–द्वादशी को शुरू होता था। इस दिन व्रत रखा जाता था। त्रयोदशी को मदन की पूजा होती थी। त्रयोदशी का यह उत्सव मदनोद्यान के उत्सव के नाम से प्रसिद्ध था। भवभूति के मालती–माधव में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मदनोद्यान के इस उत्सव के बारे में अच्छी जानकारी है। चैत्र शुक्ल– चतुर्दशी को अश्लील गाने गाए जाते थे और पूर्णिमा के दिन खूब–धूम–धाम से उत्सव मनाया जाता था।

श्री हर्षदेव ने अपनी 'रत्नावली' नाटिका में धूम–धाम से मनाए जाने वाले मदनोत्सव का सरस वर्णन किया है। मदनोत्सव के दिन सारा नगर पुरवासियों की करतल–ध्वनि, मधुर संगीत और मृदंग के घोष से मुखरित हो उठता था। राजा अपने प्रासाद के सबसे ऊँचे स्थान पर बैठकर नगरवासियों के आमोद–प्रमोद का रस लेता था। मदमत्त कामिनियाँ सामने पड़ने वाले किसी भी पुरूष को आलिंगन में बांध लेती थीं। सुगंधित पिष्टातक (अबीर) से सारी दिशाएं रंगीन हो उठती थीं। श्लोक है:–

कीर्णैः पिष्टातकौघैः कृतदिवसमुखैः कुंकुमक्षोदगौरैः
हेमालंकारभाभिमर्रमितशिखैः शेखरैः कैंकिरातैः।
एषा वेषभिलक्ष्यस्वविभवविजितशेषवित्तेशकोशा
कौशांबी शातकुम्भद्रवखचितजनैवेकपीता विभाति।।

अर्थात्/केशरमिश्रित पिष्टातक से राजपथ इस प्रकार आच्छादित हो जाते थे कि प्रातःकालीन उषा की छटा का भ्रम होने लगता था। नगरवासियों के शरीर पर शोभायमान स्वर्णाभूषण और सर 'पर धारण किए हुए अशोक के लाल–लाल फूल सुनहरी आभा को और भी अधिक बढ़ा देते थे। ऐसा लगता था कि कुबेर को भी अपनी समृद्धि से जीतने का दावा करने वाला कौशांबी नगर सुनहरे रंग में डुबो दिया गया है।

आगे वर्णन है कि उस दिन बड़े घरों के प्रांगण में फब्वारों (धारायंत्रों) से पानी की तेज धाराएँ फूटती रहती हैं। नागरिक ऐसे प्रागण में समूह बनाकर नाचते–गाते है। नागरिकों पर डाला गया सुगंधित अबीर जमीन पर गिरता जाता है नगर की युवतियाँ भी यहाँ आकर नाचती–गाती हैं। तेजी से नाचने के कारण उनके कपोलों से अबीर झरता रहता है। सारा फर्श सिंदूरमय हो गया है/कीचड़ से भर गया है।

रत्नावली के विवरण के अनुसार सबसे ज्यादा हुड़दंग वारविलासिनियों के मुहल्ले में देखने को मिलता था। रसिक नागरिक पिचकारियों (श्रृंगको) से सुगंधित जल भरकर वार–वनिताओं के कोमल शरीर पर फेंका करते थे और वे सीत्कार करके सिहर उठतीं थीं। (विदग्धविटजन गृहीतश्रृंगक जलप्रहार मुक्तसीत्कार मनोहर वारविलसिनीजनविलासितमवलाकयतु प्रियवयस्यः)। यहाँ बाँस की पिचकारी के लिए श्रृंगक शब्द का प्रयोग हुआ है। इससे जान पड़ता है कि प्राचीन काल में सिंग के नुकीले सिरे में छेद करके पिचकारी बनाई जाती थी।

वसंत काल लोगों के हृदयों को कोमल बना देता है फिर कामदेव भी अपने कुसुमबाण छोड़ता है:

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पश्चाद्विध्यति कामो लब्धप्रसरैः कुसुमबार्णः।।

रत्नावली से ही जानकारी मिलती हे कि मदनोत्सव के दिन अंतःपुर की परिचारिकाएं हाथ में आम्र–मंजरी लेकर द्विपदी–खंड का गान करती थीं नाचती थीं, मदपान में मत्त हो उठती थीं। नाचते–नाचते उनके केशपाश ढीले हो जाते थे जूड़े को बाँधने वाली मालती–माला खिसक कर गायब हो जाती थी, पैरों के नूपुर वेग को न सभाल सकने के कारण दुगुने वेग से झनझनाते रहते थे। ये महिलाएँ इतनी क्रीडा करती थीं कि लगता था कि इनके स्तन भार से इनकी पलती कमर ही टूट जाएगी, (**क्रीड़ंत्या पौडरेव स्तनभरविनमन्मध्यभंगानपेक्षम्**)।

प्राचीन काल में मदनोत्सव के एक शांत शालीन रूप का भी अस्तित्व रहा है। यह धार्मिक उत्सव मदनोद्यान में होता था। श्रीहर्ष की 'रत्नावली' कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' भवभूति के 'मालती–माधव' आदि ग्रंथों में मदनोद्यान उत्सव के बारे में विस्तृत जानकारी मिलकती है।

मदनोद्यान नगर के बाहर होता था और इसमें कामदेव का मंदिर हुआ करता था। यह उद्यान विशेष रूप से मदनोत्सव के लिए होता था। उत्सव के दिन नगर के लोग यहां एकत्र होते थे और भगवान कुसुमायुध की पूजा करते थे। लोग फूल, चुनतें, मालाएँ बनाते, अबीर–कुसुम से क्रीड़ा करते और नृत्य–गान आदि से मनोविनोद करते थे। यह उत्सव प्रातःकाल से सायंःकाल तक चलता रहता था। यहाँ न केवल साधारण नागरिक, बल्कि प्रतिष्ठित परिवारों की कन्याएँ भी पहूँचती थीं। मालती–माधव के वर्णन से पता चलता है कि अमात्य भूरिवसु की कन्या मालती एक विशाल हाथी पर बैठकर पूजा करने और उत्सव मनाने के लिए वासवदत्ता और उसकी परिचारिकाएं भगवान कंदर्प की पूजा के लिए मदनोद्यान में गई थीं, और वत्सराज भी गए थे। उस समय वासवदत्ता ने कुसुंभी रंग की साड़ी पहनी थी। रानी जब लाल अशोक वृक्ष के नीचे स्थापित कामदेव की पूजा कर रही थी तो उसकी लाल साड़ी का पल्ला फड़फड़ा उठा था।

मदनोद्यान में लाल अशोक वृक्ष के नीचे कामदेव और रति प्रतिमाएँ स्थापित की जाती थीं। वृक्ष के नीचे चावल भरे मिट्टी के एक कलश को रखकर उसे सफेद वस्त्र से ढँक दिया जाता था। फिर इस पर केले के पत्ते रखकर कामदेव और रति की प्रतिमाएँ उतारी जाती थीं। फिर लोग गंध, धूप, नृत्य गीत आदि से भगवान कंदर्प की अर्चना करते थे।

कामदेव की पूजा के बाद एक और आकर्षक उत्सव मनाया जाता था। यह उत्सव था अशोक में दोहद उत्पन्न करना, यानी पादाघात से अशोक में फूल खिला देना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'रत्नावली' से और 'मालविकाग्निमित्र' में इस अनुष्ठान की जानकारी मिलती है। रानी या कोई अन्य सुन्दरी अच्छे आभूषण धारण कर, पैरों में महावार लगाकर, बाएँ पैर से अशोक वृक्ष पर आघात करती थी। तब अशोक वृक्ष पुष्प–गुच्छों से भर जाता था। रत्नावली' में यह काम रानी वासवादत्ता ने किया था। उस समय वहाँ राजा के अलावा अतःपुर की परिचारिकाएँ भी थीं। 'मालविकाग्निमित्र' में कालिदास ने यह काम मालविका से करवाया है क्योकि उस दिन रानी के पैर में चोट आ गई थी। मालविका द्वारा किए गए इस अनुष्ठान का सरस वर्णन है :

नवकिसलयरागेणाग्रपादेन बाला स्फुरितनखरूचा द्वौ
हंतुमहंत्येनेन।
अकुसुमितमशोकं दोहदापेक्षया वा प्रणमितशिरसं वा
कांतमार्द्रापराधंम।।

हमारे सभी प्रमुख पर्व मुख्यतः कृषि–उपज और ऋतु–परिवर्तन से जुड़े हुए हैं। प्राचीन होलिकोत्सव मुख्य रूप में किसानों का पर्व रहा होगा। बाद में इसमें समाज के दूसरे वर्गों के अनुष्ठानों का भी समावेश होता गया। होली के बारे में प्रचलित पौराणिक आख्यान काफी बाद में रचे गए। हिरण्यकशिपु की बहन होलिका प्रह्लाद को गोद में लेकर जलाने के लिए अग्नि में बैठी थी। प्रह्लाद में आस्था के साथ कहीं–कहीं होली में से एक लक्कड़ निकाल कर उसे जलाशय में ठंडा करते हैं। यह काष्ट प्रह्लाद का प्रतिनिधित्व करता है।

भविष्यपुराण में होली के बारे में एक और आख्यान है ढुंढा ढीढ़ा नाम की एक राक्षसी थी। ऋतुसंधि के दिनों में वह बालकों को सताया करती थी। शिव से उसने वर प्राप्त किया था, इसलिए वह अवध्य थी। सतयुग में राजा रघु ने गुरु वसिष्ठ से राक्षसी को शांत करने का उपाय पूछा। उन्होंने बताया कि फाल्गुन की पूर्णिमा के दिन, जब शीत समाप्त होता है और गरमी शुरू होती है, तब सब आदमी, विशेषकर बालक, काष्ठ के शास्त्र धारण करें, लकड़ी और उपलों को ढ़ेर लगाएँ और शाम को उसमें आग लगाकर राक्षस–विनाशक मंत्रों से हवन करें। सब लोग उसे अग्नि की तीन बार प्रदक्षिणा करके अड्डा का घोष करें। इससे उस राक्षसी की पीड़ा दूर होगी।

दरअसल यह ऋतु–संधि की पीड़ा है शीत के जाने और गर्मी के आने के बीच कई रोग फैलते हैं। वसंतागम के समय बच्चे अक्सर बीमार पड़ जाते है। अग्नि जलाकर कीटाणुओं को नष्ट किया जा सकता है। नृत्य–गायन और मनोरंजन शरीर में स्फूर्ति पैदा करते हैं वसंतकाल में होलिकोत्सव मनाने का एक प्रयोजन यह भी रहा है। ❑

(साभार : कार्ष्णि कलाप)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दी कविता में होली प्रसंग

–बलदेव वंशी

होली विश्वास, प्रेम, लोकरंजन का अनोखा त्योहार है। इस का लाल रंग प्रेम और बलिदान दोनों को प्रतीक रूप में सामने लाता है। यह जनब्रजन को परस्पर प्रेम सूत्र में गूंथ देता है।

मौज–मस्ती, रंगीनी और आनंद–उल्लास को मनमोहक रँगों में स्मृति पटल पर छिटक देता है। इस का प्रारंभ माघ शुक्ल पंचमी से हो जाता है जब ऋतुराज वसंत में प्रकृति अपनी अनंत रंग–समृद्धि बाहर उलीच देती है। फलों–पत्रों से सज–सवँर कर निखार पाने लगती है। शस्य–श्यामला भूमि का वैभव, सुहावन मौसम की मधुरिमा का आनंद लेते नर–नारी एवं पशु–पक्षी अघाते नहीं

वास्तव में होली का त्यौहार फाल्गुन की पूर्णिमा को मनाया जाता है डपली, ढोल, मजीरे बज उठते ह। बूढौं बच्चों, प्रौढों की टोलियां झूम झूम कर नाचने–गाने लगती है।

हमारे साहित्य में भी मस्ती लाने वाली इस होली का बडा ही मनमोहक वर्णन मिलता है। सूरदास, रसखान, पद्यमाकर, निराला प्रायः सभी कवियों ने होली का बड़ा ही रसपूर्ण वर्णन किया है महाकवि सूरदास ने नन्द–नन्दन श्रीकृष्ण और वृषभानु किशोरी राधा के होली खेलने का बड़ा सजीव वर्णन किया है :–

नन्दनन्दन वृषभानु किशोरी, मोहन राधा खेलत होरी।
श्री वृन्दावन अतिहि उजागर, वरन'बरन नव दम्पति मोरी।।
एकनि कर है अगरु कुमकुमाँ, एकनि कर केसरि लै घोरी।
एक अर्थ सौ भाव दिखावति, नाचति तरु न बाल वृध भोरी।।
स्यामा उतहिं सकल बजवनिता, इतहिं स्याम रस रूप लहौरी।
कंचन की पिचकारी छूटति, छिरकत ज्यों सचु पावैं गोरी।।

ब्रज मंडल की होली का वर्णन करते हुए रसखान कहते है :–

जाहु न कोऊ सखी जमुना–जल रोके खड़ो मग नन्द को लाला।
नैन नचाइ चलाइ चितै रसखानि चलावत प्रेम को भाला।।
मै जु गई हुति बैरन बाहर मेरी करी गति टूटि गौ माला।
होरी भई कै हरी भए लाल, कै लाल गुलाल पगी ब्रजबाला।।

शीतकाल की जड़ता त्याग कर प्रकृति देवी जब नए रूपरंग और साज–सिंगार से शोभित हो होली मंच पर उतरती है तो चिरकाल से भारत के निवासी उस की अगवानी करते आए हैं। वैदिक काल में इसी दिन नववर्ष का शुभारंभ माना जाता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था। तथा कर्म–कांडी लोग इसी दिन से प्रथम चातुर्मास्य से संबंधित यज्ञ का श्रीगणेश करते थे। दूसरी शती के लगभग संकलित जैमिनी के कीमांसा–दर्शन में होलाकधिकरण नाम का एक अध्याय जोड़ कर इस विशुद्ध लौकिक त्योहार का हिन्दूकरण हुआ। तीसरी शती में संचित वात्स्यायन के कामसूत्र में इस उत्सव का नाम होलिका दिया गया। इसके बाद कालिदास के समय और बाद के काल में इसे ऋतु उत्सव का रूप भी दिया गया। नारद पुराण में फागुन पूर्णिमा को होलिका पूजन की व्यवस्था दी गई है। चारों दिशाओं से जुटाई गयी लकड़ियों की ढेरी में आग लगाने और बाजे–गाजे के साथ उस धधकते हुए अग्नि कुंड के चारों ओर तीन बार फेरा लगाने का सुझाव दिया गया है। आगे चल कर भक्त प्रहलाद को भयभीत करने वाली होलिका नाम की राक्षसी को जलाने की प्रथा चल निकली।

बरसाने और ब्रज की होली की एक छटा पद्यमाकर की कविता में देखें :–

झेलाझेल झोरिन की, मूठिन की मेलामेल,
रेलापेल रंग की उमंग सरसत है।
कहैं पद्यमाकर गवैयन की एंल परी,
गैल–गैल फैल–फैल फाग बरसत है।।
धूम धधकि अनकि धधकी बजत तामे,
ऐसो अति ऊधम अनोखौ दरसत है,
ग्वाल पर ग्वाल तिहिं ग्वाल पर नन्द लाल
लाल नन्दलाल पै गुलाल बरसत है।।

पद्यमाकर ने होली की मस्ती का ऐसा जीवन्तवर्णन किया है कि पूरा दृश्य आँखों के सामने नाच उठता है। गोपियाँ नंदलाल की दुर्दशा कर देती है और नैन नचा कर मुस्कराकर कह देती हैं :–

"लला फिरि आइयो खेलन होरी"।

कविवर निराला ने भी प्रेमी–प्रेमिका के समागम का बड़ा मनोहरी वर्णन किया है। प्रिय ने जी भर कर होली खेली प्रियतमा के नयनों के गुलाल भरे डोरे उस की गवाही देते हैं :–

नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होरी।
जागी रात सेज प्रिय पति–संग रति'सनेहरस घोली।
दीपित दीप प्रकाश कंज छवि मंजु मंजु हंस खोली।
मची मुख चुम्बन रोली।

व्यक्ति के भीतर जलने वाली प्राण–ज्वाला ही चेतना के विभिन्न रूपों में समाज–जीवन में व्यक्त होती है। किंतु इसी ज्वाला–अग्नि के ब्रह्माण्डीय–विस्तार, और रँग और खेल को महादेवी वर्मा इन शब्दों में व्यक्त करती हैं :–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"कितने रंगों में आज नहा आई है मेरी ज्वाला
नभ नीलम मंदिर लगता सूर्य कलश–सा
धरती–तल वेदी हुआ तरल मरकत–सा,
यह तिमिर खिला है पर्त–पर्त ज्यों शतदल,
रीजलते है इस पर ओस बिदुं से युग–पल,
फूलों की घाटी है तरंग की माला
कितने रंगों में आज नहा आई है मेरी ज्वाला।

इन्हीं संदर्भो को युवा हरिमोहन भी आगे बढ़ाते हुए कहते है :–

"देह के इस फूल में, फागुन मचा है।
बँधी थी अब तलक कस्तूरी गंध वह
फैली इस दिशाओं में। भटकती सूनी, हवाओं में
फागुन बसा है ।"

किंतु इन दार्शनिक गहन–गंभीर स्वरों के साथ ही फागुन को फागुनी रंगों को चटख जलीय रँगों में, हास–परिहास में घोल कर छिटकानें की परम्परा अधिक मुखर रही है। द्रवीय रँग आमोदकारी सामाजिक सम्बन्धों में कैसे रग भरते है।
युवा कवयित्री मंजु दीक्षित के शब्दों में इस की भी बानगी लें :–

कोई नीला, कोई पीला, तो कोई लाल होली में
सभी विक्रम बने फिरते हैं यूँ बेताल होली में
सुरक्षित रह न पाएगी किसी की ढाल होली में
पराया माल भी लगता है अपना माल होली में"

हास्य–विनोद और व्यंग्य के रंगों को अपनी काव्य–पिचकारी में भर कर सौन्दर्यमय छींटे बिखेरते हुए कुछ दोहे शिव प्रसाद कमल के :–

फागुन की देहरी हुआ, पाहुन है रसराज।
गंध रंगीली उड़ रही, फिर सांसो में आज।।
एक–एक मुस्कान पर,आज बिरिज के द्वार।
कुंमुम और अबीर संग, बरसै रस की धार।।
सात रँग की देह लग रही, इतना उड़ा गुलाल।
नील हरित नदियाँ हुई, झील बन गयी लाल।।

❐

–पूर्व रीडर श्री अरविन्द कालेज, नई दिल्ली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जग में होरी–ब्रज में होरा

डा० नजीर मुहम्मद

भारत देश उत्सव त्यौहारनु के लिये प्रसिद्ध है। भारतवर्ष के अन्य प्रदेसनु की अपेक्षा ब्रज में सदा तें ही उत्सव त्यौहारनु की अधिकता रही है। ब्रज में कोई रितु कोई महीना या दिनु ऐसो न होइगो जब कोई छोटौ बड़ौ उत्सव, मेला या त्योहारू न मनायौ जातु होंय। जाही तें कह्यो जातु है "ब्रज मे सात बार नौ त्यौहार" ब्रज में सदा ही धार्मिक धूम–धाम और लौकिक मनोविनोद कौ वातावरन बन्यो रहतु है।

ब्रज के त्यौहारनु मे चार त्यौहार मुख्य हैं रक्षाबंधन, दसहरा, दिवारी, औरु होरी। इनमें ते होरी सबतें अधिक आंनद उत्साह–उमंग रंग–औरु ढंग ते मानई जाति है। ब्रज मंडल में बसंत पंचमी तें ही होरी को प्रारंभु है जातु है। बसंत पंचमी के दिन होरी को डाँडौ गाड़ौ जातु है। होरी के स्थान पै कछू ईंधन धरि दयो जातु है। जाही दिना तें होरी की तैयारी होन लगति हैं। गावन लगत है :–

होरी आई रे बसंता, ढप मँढ़ि दै होरी आई रे।
तू ढफ के संग तुफक मँढ़ि दै। होरी आई रे

द्वै दिनातो होरी देस में सब जगह मनाई जाति है, एक दिना जराइवे वारी और दूसरे दिना खेलिवे वारी परि ब्रज 'चौरासी कोस ' मे तो होरी पूरे सत्तर दिना मनाई औरु खेली जाति है। बसंत पाँचें तें चैत की पून्यों तक कहूँ न कहूँ काहू न काहू रूप में स्वाँग, संगीत की समाजें, रसियनु के दंगल, मंडलीन के नाच, चौपईनु के जमाव होत ही रहत हैं। महिलानु की मंडली गाय उठति है :–

होरी में रसिया प्यारौ लगै होरी में।
जाकूँ सुनि के रसिया कहतु है
तेरी चटक चुनंरिया देखि
बिरहुली रसिया कूदौ आँगन में

जा तरह राग–रंग, गायन वादन नाच रँग हँसी मजाक, हास–परिहास को जो दौर चलतु है वु होरी के खास दिन के आवत आवत अपनी पूरी सीमा पै पहुँचि जातु है।

हमारे पर्व और त्यौहारनु के पीछे कोई न कोई अन्तर्कथा छिपी भई होत है। होरी के सम्बन्ध में प्रहलाद और हिरण्यकश्यप की कथा प्रसिद्ध है। अहंकारी राजा हिरण्यकश्यप ने अपने बेटा ईश्वर भक्त प्रह्लाद कूँ जराइवें के लयें बहिन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होलिका की सहायता लई। होलिका कूँ जि वरदान मिल्यौ भयौ हो कै वु आगि में जरैगी नाहिं। ईंधन को बहुत बड़ो ढेरु लगाइकैं गोद में प्रहलादै बिठाइकैं होलिका ढेर पै बैठ गई। फिरि वामें आगि लगाई दई गई। आगि धधकि उठी। भगवान की कृपा तें होलिका पजरि के समाप्त है गई। प्रहलाद कौ बारू हू बाँकौ न भयो। जाही घटना के स्मरण स्वरूप जि त्यौहार मनायो जातु है। वैसे जि नए वर्ष के सुभारम्भ कौ सूचक हू है।

रातिकूँ सुभ मुहूर्त में होरी मे आगि लगाई दई जाति है। आकास कूँ छूइवे वारी आग की लपटें धूँ धूँ करिकें ईंधन के ढेर कूँ जलाइ देति हैं। प्रातः काल ही तें होरी खेलिवेवारे हुरइयनु की चौपाई बालक और वृद्ध सबुही ढप ढोलक झाँझ, मजीरा नक्कारे बजावति भई निकरति है और जरी भई होरी के चक्कर लगावति भई गावति हैं :–

हरिनाकुसकी भैन होरिका
लै पजरी पहलाद कूँ।

फिरि तो बड़े छोटे, मूरख विद्वान, दरिद्र धनवान, सबकौ अंतर समाप्त है जात हैं। सब एक दूसरे तें होरी खेलन लगत हैं :–

होरी माहें आठ दिन, व्याह माँहि दिनचार
सठ, पंडित, वैस्या, सती सबै होत इकसार।

स्त्रियाँ पुरुषनु पै रंग डारति भई गावति हैं :–

आजु विरज में होरी रे कोई बुरोन मानों
जेठ संग खेलूँ, ससुर संग खेलूँ
दिवर तें खेलूँ बरजोरी रे, कोई बुरो न मानों

सबई लोग एक दूसरे पै रंग डारत हैं। दोपहर तक जे कार्यक्रम समाप्त है जात हैं। फिर सब नहाय धोइ कैं साँझ कूँ अपने इस्टमित्रनु तें प्रेम पूर्वक मिलत है और परस्पर मिठाई बाँटत हैं।

होरी के अवसर पै मथुरा, वृन्दावन, गोकुल बलदेव, नंदगाँव और बरसाने के मंदिरनु में विविध झाँकी सजाई जाति हैं। बल्लभ सम्प्रदाय की सेवा विधि के अनुसार तो फागुन पूरो ही होरी के उत्सवनु को महीना है। वामें प्रति दिन होरी की झाँकी सजाई जाति हैं। कीर्तनियां धमारनु को गायन करत हैं। ढप–ताल मँजीरन के संग होरी के रसिया गाए जात हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य गाँवन में हूँ होरी मनाइवे की कछू अलग अलग रीति हैं। ऊमरी जतीपुरा कों चरकुला नृत्य प्रसिद्ध है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फालैन गाँव में प्रहलाद कुंड के समीप जलती होरी में ते एक पंडा केवल अंगौछा पहिरें नंगे बदन नंगेपाँव कुंड में स्नान करिकैं धधकती भई होरी में तें निकरत हैं। जा रोमांचकारी चमत्कारपूर्न दृश्य कूँ देखिवे के लयें दूर–दूर के देस विदेस के अनेक लोग वाँ इकठ्ठे होत हैं।

बरसाने और नंदगाँव की लठामार होरी हूँ बहुत आकर्षक होति है। नंदगाँव के गोस्वामिनु कौ एक दल कृष्ण और उनके सखानु के प्रतीक रूप में सज धज के गावत बजावत भयौ राधाजी के गाँव बरसाने में श्रीजी के मंदिर में पहुँचत है और कन्हैया जी के पहुँचिबे की सूचना देतु भयौ बरसाने की गोपिकनु कूँ सम्बोधित करत भयौ गावतु है :–

रसिया आयो तेरे द्वार खबर दीजो
यह रसिया पौरी में आयो जाकी बाँह पकरि भीतर लीजो।
फिरि वे राधिका जी कूँ सम्बोधित करत भए गावत हैं:–
दरसन दै निकसि अटा में तें, दरसन दै
तू ऐसी वृसभानु नंदिनी जैसे निकस्यो चंदघटामें ते

तो ग्वालनु की ओर तें गायो जातु है :–

बूझौ याहि संग चलेगी री बूझो याहि।

उत्तर में गोपिनु की ओर तें गायो जातु है।–

इन गलियनु काम कहा तेरौ
इन गलियनु मेरो स्पालू फारो।
मैं फाँरूगी पर झग्म तेरो।।

जातरह गावत भए हुरियारनु को दलु मंदिर तें नीचे उतरि आवतु है। वहाँ रँगीली गली में बरसाने के गोस्वामीनु के घर की स्त्रियाँ सजधज के गोटा किनारी के लंहगा–ओढनी पहने घूँघट निकारें हाथनु में लम्बे–लम्बे लठ लयें उनके स्वागत कूँ ठाड़ी मिलति हैं। हजारनु नर–नारी चारों ओर के छज्जेनु पै देखिवे कूँ भरे होत हैं। गली में सबके आइबे पै बरसाने की नारी नंदगाँव के गोस्वामीनु पै धडाधड लाठीनु की बौछार करन लगति हैं। नंदगाँव के लोग चमडा की ढाल सरपै धरें घुटननु के वल धरती पै बैठि जात हैं और मेंढकनु की तरह फुदकि–फुदकि के अपनी रक्षा करत हैं। जा तरह सखी और रसियनु के बीच तीन बार लाठीनु की बौछार होति है। बाद में नंदगाँव के लोग वापिस चले जात हैं।

दूसरे दिना बरसाने के हुरियारे नंदगाँव की नारीनु तें होरी खेलिवें सजिधजि कें राधाजी की ध्वजा लै कें पहुँचत हैं। वहाँ नंदराय के मंदिर में समाज गायन होतु है फिर मैदान में नंदगाँव की नारी बरसाने की तरह की लठमार होरी खेलति है। वे गावति हैं :–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चुँदरिया रंग में बोरि गयो कान्हा बंसी बारौ
मो पै केसरि गागरि ढोरि गयो। कान्हा बंसी बारौ

जतीपुरा मे हू लठामार होरी खेली जाति हैं जाब बठैन में हू लठामार होरी होति है। यहाँ अपनी रक्षा के लये पुरूष काँटेदार बबूल की डालें लये रहत है।

ब्रज क्षेत्र में दाऊजी को हुरंगा भौतु प्रसिद्ध है। जाहि देखिबे के लये दूरि दूरि तें लोग इकट्ठे होत हैं। दाऊजी के विशाल मंदिर के आँगन में एक ओर नारियाँ लँहगा–ओढनी पहनें, घूँघट काढे अपने हाथुन में रंग भरी बालटी और बटे भए कपड़नु को कोड़ा लै कें और दूसरी और उनके पति देवर और अन्य सम्बन्धी अपने हाथुन में रंग भरी पिचकारी लयें भए होरी खेलिबे के उत्साह में मस्त दिखाई देत हैं। नारि पुरुषनु पै डोलची तें भरि भरि के रंग डारति हैं और कोड़ा बरसाबति हैं और पुरुष उन पै पिचकारी चलावत है रंग–गुलाल डारत है। बीच–बीच में होरी और रसियन को गायन होत रहत है :–

होरी में मेरे लग जायगी
मत मारे दृगनु की चोट।
मची होरी रे मची होरी
बाबा नंद के द्वार मची होरी।

ब्रज–भाषा के कबि सूर, नंददास, पद्माकर, ग्वाल, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र औरु नजीर अकबराबादी आदि ने ब्रज की होरी को सरस वर्णन कियौ है।

ब्रज की अनोखी होरी बहुत प्रसिद्ध है। कहौजातु है–

यह है ब्रज देस निगोरा
अब जग में बज्यो ढिढोरा।
और देस में होरी देखी
ब्रज में देखौ होरा।।

❐

– पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष
अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रज लोक गीतन में होरी

–डॉ० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ

कैसो जि देस निगोड़ा, सब जग होरी ब्रज में 'होरा' ब्रज की होरी के लय जि कहावत ठीक बैठे। जा ब्रज की होरी अनोखी होय। बसन्त पंचमी कूँ होरी कौ ढ़ाडौ गाढ़ो जाय तबइ ते ब्रज में होरी को वातावरण बनिबे लगि जाय। सबतें पहले तौ मन्दिरन में गुलाल की होरी खेली जाय। तब तक ठाकुर जी के दर्शन खुले रहें, गायक गण नगाड़े की चोट पै ऊँचें स्वर में होरी के लोक गीत गामें। एक गीत जा तरिया गामें :–

होरी खेलूँगी स्याम संग जाय सजनी
भागन तें फागुन आयो
वाने भिगोई मेरी पचंरग अँगया
मैं तो भिगोऊँ बाकी पाग सजनी भागन तें फागुन आयो
वाने चलाई केसर पिचकारी
मैं तो उड़ाऊँगी गुलाल सजनी भागन तें फागुन आयो

ऐसे ई ऊँचे स्वर में एक के बाद एक गीत की लड़ी पिरोय दें। गामन वारेन की उमंग और उत्साह कह्यो नां जाय सकै। इन्हें सुनि के दर्शक भक्त आनन्द सूंझूमि झूमि उठें। बहुतेरे तो नाचिबे लगि जायं। फागुन की पूर्णिमा ते आठ दिना पहले अष्टमी कूँ राधारानी के गाम बरसाने में लठमार होरी खेली जाय। जा होरी कूँ देखिवे देस विदेसन के सैकन्न लोग एकत्र होंय। रंगीली गली के दोनों ओर बने भयेघरन की अटारि पै और छत्तिन पै होरी देखिवे कूँ बैठि जायं। घंटन बैठेई रहें। उत राधारानी के मन्दिर में विधिवत पूजा करिकें, ठाकुर जी सों रंग और गुलाल की होरी खेलि कें बरसाने की गोपी और नन्दगाम के गोप रंगीली गली में आइवें कूँ मन्दिर की सिड्डिन सों धीरे–धीरे उतरे। रंगबिरंगी लँहगा फरिया पहनें लंबो सो घूँघट काढ़े हाथन में अपने से खूब ऊँचें डंडा लैके इतराती, इठलाती, बलखाती उतरें तो सबकी दृष्टि उनकी ओर लगि जाय। इतै रंगीली गली में नगाड़े बजामते और ऊँचें सुर में होरी के लोकगीत गामत भये गायक बारी बारी सूं टोली बनाय के निकरें। उनके गीतन सूं रंगीली गली गूँजि उठै :–

दरसन दै निकसि अटा पै तै दरसन दै
तू राधा वृषभानु नन्दिनी, जैसे प्रकटो चन्द्र घटा पै तें दरसन दै।
और फाग खेलन बरसाने मे आये है नटवर नन्द किशोर
छाय रही छवि छटा छबीली घेरि लई सब गली रंगीली
ढप ढोल मृदंग बजाये हैं वंसी की घनघोर।। फाग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब असली खेल आरंभ होय। हाथन में ढालन कूं लैके उछलते कूदते हुरिआर गली में आय जायं। मस्तक पै तिलक लगाय के रंगबिरंगी पाग पहन के डंडन की मार खाइवें कूँ प्रस्तुत है जाय। हुरिआरिने आय के खूब ऊँचें हाथ करि कें दोऊ हाथन को ज़ोर लगायं कें डंडन सूँ मारी मार करें। हुरियार अपनी ढालन के बल पै कूदि कूदि कें अपने कूँ बचाय लेंय। गली की ओर पास छत्तिन सौ बोरी भरे गुलाल नेंक नेक करिकें उड़ाये जायं तो रँगीली गली में रंगबिरंगे बादल से उमडि परैं। ऐसे वातावरण में दर्शक और भक्त समुदाय कहै के 'जो रस बरसि रह्यो बरसाने सौ रस बैकुण्ठहु में नायं'

दूसरे दिना नौमी कूं नन्द गाँव की होरी होय। जाको रूप कछू कछू बरस ने की होरी जैसो ई होय। या दिना नन्दगाम की स्त्रियाँ बरसाने के हुरियारिन पै डंडा बरसामें। अदले को बदलो है जाय। आमिने सामने खड़े है कें आपस में गीत गाय गाय के हासपरिहास करें फिर डंडा मारिबै को कार्यक्रम आरंभ है जाय। एक वर्ष में एकई बेर जे गोपी डंडा मारि के बदलो बहोरें।

नंदगाम और बरसाने की होरी हैवे के दिना ते पुन्नमासी तक ब्रज मे स्थान–स्थान पै होरी कौ मेला सौ लगै। कहूँ काऊ गाम में चरकुला की तैयारी है रही है तौ कहूँ बरसाने और नन्दगाम की सी डंडामार होरी को प्रदर्शन कियो जाय रहयौ ए। मथुरा में कृष्ण जन्म भूमि के रंगमंच पै बरसाने नंद गाम जैसी लीला दुहराई जाय। ब्रजवासिन के घरन में फुलौरा दौज तें लैके होरी जरिबे के दिना तक आँगन में आटे सूँ। चौक बनाय कें टिकुली जायं। रोज तरह–तरह के रूप में ब्रज की छोरी गोबर सूँ लीपि कें टिकुली बनाइवें को काम करें और गोबर की गूलरी बनाय के सुखामें। इन गुलरिन कौ उपयोग होरी जराइबें मे करौ जाय।

होरी के शुभ महूरत में होलिका की पूजा परिकम्मा करिकें बड़ी होरी में गूलरी ध ारिकें दहकिबे पै बिनै लाय कें घर की होरी जराय दई जाय। घर के सब लोग–लुगाई बूढे–बालक होरा और जौ भूनिबे में लगि जायं। वा समय जि गीति गायो जाय :–

हो हो होरी आई रामचना रे
काहे को दान दिंगे रामचना रे
गउअन कौ दान दिंगे रामचना रे
काहे को दान दिंगे रामचना रे
वेटिन कौ दान दिंगे रामचना रे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जि संकेत भैनि बेटिन के ब्याह करिबे कौ होय। होरी जरिबे के समय एक गीत जा तरियाँ गायो जाय :–

राजा बलि के द्वार जरी होरी राजा बलिके
कौन के हाथ रंगीलौ ढप सोहै
तो कौन के हाथ गुलाब की छड़ी, राजा बलि के
कान्हा के हाथ रंगीलो ढप सोहै तौ
दाऊ जी के हाथ गुलाब की छड़ी, राजा बलि के

जा गीति में कृष्ण और बलदाऊ कौ नाम लैके आगे की कड़िन में घर के भइअन के नाम लये जायं। कृष्ण बलराम और राधा के बिना तौ ब्रज की होरी हैई नायं सकै। होरी बरस भर कौ त्यौहार होय। बहुत दिन है जायं तौ होरी पै मनाइबे कौ महूरत आवैः–

बहुत दिनन सौ बिछुरे स्याम सखी होरी पै मनाय लायें री
बजत ताल मृदंग ढप और मजीरन जोरी
उड़त गुलाल लाल भये बादर रंग की परत फुहार
सखी री चलौ होरी पै मनाय लायें री .....

जा होरी में कोई तो सुखी होय और कोई अपने दुर्भाग्य कूं लैके दुःखी है जाय। होरी के एक गीत में जा बात कौऊ वर्णनन करौ गयो ए :–

चम्पा के नौदस पेड़ अनार की एक कली
चम्पा रही एँ मुसकाय अनार हू फूलि रहे
को भैया खेलें होरी फाग तो को भैया ठाड़े ई डोलें
कृष्ण तो खेलें होरी फाग तो बलदाऊ ठाड़े ई डोलें

कृष्ण दाऊ सों कहें :–

खैलो भैया फाग सुहाग तुम्हें भैया राम दुहाई

जाई बात पै होरी कौ खेल आरम्भ है जाय तौ फिर दोनों जने खेलते खलते वृन्दावन तक पहोंच जायें :–

खेलत खेलत पहुँचे वृन्दावन
वृन्दावन की कुंज गलिन में
राधा के छूटे है केस कृष्णजी की छूटी पिचकारी

श्री कृष्ण ने राधा पै ऐसी रंग भरी पिचकारी छोड़ी कि राधा के बंधे केश बिखरि गये। जा बात पैं राधा रिसाय गई और बोली है ढीठ तोसों होरी खेलनों ही भलों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नायं। इत्ती बात कहिकें ऊ राधा खेलिबो ई चाहे तो फिर तो गुलाल उड़िबे लगै और रंग बरसन लगै :–

राधा गई ए रिसाय ढीठ तोसों को खेले होरी
उड़त गुलाल लाल भये बादर रंग की उड़त फुहार,

कन्हैया की अचगरी देखो। रंग की पिचकारी सीधी आँखिन में मार देय है :–

नैनन में पिचकारी दई, मोहे गारी दई होरी खेली न जाय

अब होरी खेले तो कैसे बु तो आँखिन सो इसारो करिके चोट करि रहयो ए तब गोरी कहै–ओ रसियां आँखिन सूँ चोट मति मारे जे नैनन के तीर मतीना चलावै मेरे करेजा पै चोट लगै :–

मति मारे दृगन की चोट रसिया होरी में मेरे लगि जायगी
पहली चोट बचाय गई हूँ करि घूँघट की ओट रसिया
तुम हो बड़े निघोट रसिया
दूजी चोट बचाय गई हो करि हाथन की ओट रसिया
होरी में लगि जायगी।
तीजी चोट बचाय गई हों करि छतियन की ओट रसिया
होरी में मेरे लगि जायगी।

पर कन्हैया कहाँ मानें। बाने तौ गोपी रंग में रँगि ई दई।

रंग में रंगि दई बाँह पकरि लई लाजन मरि गई होरी में
इकली भजि दई होरी में हुरमत लाज गई होरी में
चूँदर रंग बोरी होरी में पिचकारी मारी होरी में
है के स्याम निसंक भुजा भरि लीनी होरी में

भला होरी में ऐसो ऊ कोऊ करै। वाने पहले तो बाँह पकरिलई फिर इकली जैसे तेसै भाजी तो पिचकारी मारि कें चूनर भिगोय दई और फिर सबतें बुरी बात तौ जि भई के वाने निसंक है के भरपूर आलिंगन करि लियो। अब सबके बीच में होरी हैबे लगी। सबहि गामन लगे :–

आज बिरज में होरी रे रसिया, होरी रे रसिया बरजोरी रे रसिया
अपने अपने भवन तें निकसी, कोई साँवरि कोई गोरी रे रसिया
कौन गाम के कुँवर कन्हैया कौन गाम की गोरी रे रसिया
नंदगाम के कुँवर कन्हैया, बरसाने की गोरी रे रसिया

बस अब बदलो ले लेउ। सब सखी जुरिमिलि के आय गई और स्याम कूँ पकरि के बैठाल लियो। अब कहाँ जायगो रे लीनो स्याम पकरि कें :–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा जू सैन दियो सखियन कों, झुंड झुंड जो धाइ
लपटि झपटि गई स्याम सुन्दर सों, बरबस पकरि लै आई
लाल जू कौं नाच नचाई।
लीन्हो छीनि पिताम्बर मुरली, सिर सो चुनरी उडाई
बेंदी भाल नैन बिच काजर, नकबेसर पहराई
मानो नई नारि बनाई

अबई कहाँ। अबई मन तौ नायं भरौ देखो सखियो जि होरी खेलिवे आयो ए। जाय मजा चखाय देउ पहले तौ जाय रंग मे बोर देउ :–

होरी खेलन आयो स्याम आज जाय रंग मे बोरो री
कोरे कोरे कलस मँगाओ जामें केसर घोरो री
मुख पै केसर मलौ करौ कारे तें गोरो री

जाकी हरे बाँस की बाँसरी कूँ तोड़, मरोड के फेंकि देउ। जब हाथ जोड़ि के विनती करै तबई जाय मुक्ति देउ :–

हरे बाँस की बांसुरिया जाय तोरि मरोड़ो री
हाथ जोरि जब करै वीनती तब जाय छोड़ो री
लोकलाज कुल की मर्यादा सब ई तोड़ो री
सखी कहें ये स्याम आज बनि आयों भोरो री

होरी की पुन्नमासी कूं होरी जरै, पड़वा कूं खेली जाय पर बल्देव में द्वौज कूं होरी कौ हुरंगा होय। दाऊजी के मन्दिर में गुसाईं परिवार रंग की होली खेलै। मंदिर के आँगन में टेसू को रंग धरौ जाय फिर परसपर खूब होरी होय। बइअरि आदमिन के कपड़ा फारि के वाकों कोड़ा सो बनाय के खूब पीटें। जा पिटिवे पै आदमी खुस होयं और आनन्दित है के वे बइअर रंग के छीटा दर्शक गण के ऊपर ऊ डारें :–

खेलो बलदाऊ जी सो होली
जे तो कहिये ब्रज के राजा
फगुआ लैन चलोरी।

ब्रज की होरी मात्र मनोरंजन नायं होय। यहों तौ मानो श्रीराधारानी और ठाकुर श्री कृष्ण चन्द्र ई होरी की लीला करें हैं ओर ब्रज के नर नारी वाई कौ अनुकरण करैं हैं, वैसो ई हासपरिहास वैसी ई चुहुल बाजी और वैसी ई मस्ती ब्रज की होरी में दृष्टि गोचर होय है। गायबे के लयं गीत तौ इत्ते हैं के दिनारात गायकें ऊ उनको खजानों खाली नायं होय। ☐

– सरोजनिलयम, डैमपीयर नगर, मथुरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रज होरी कौ रंग हुरियारेन के संग

—मोहनलाल शर्मा

ब्रज कौ होरी रंग निरालौ है। फागुन मास लगतई सबरे ब्रज में मौजमस्ती को जो आलम छाय जाय है वामें सब नरनारी झूम उठै हैं। सीरी–सीरी फागुनी ब्यार में तन–मन अँगड़ाई लै उठै है और पेड़–पौधन ते लैकें प्राणीमात्र में ऐसे जीवन रस कौ संचार होय है कै ऊ निकर्‌यौई परै है। होरी आमत आमत तौ ब्रज आनन्द विभोर है जाय। अपने स्याम स्याम के संग रंग मे रंगीले बनिके ब्रजवासी होरी खेलिबे के लएँ हुरियार बन जाँय है और ब्रजनारी हुरियारिन के रूप में साथ निभाइके या आनन्द कूँ दुगनौ करै हैं।

ब्रज होरी के आनन्द कौ कहा ठिकानौ! चारों और अबीर गुलाल के बादर, झाँझ मजीरन की झंकार, केसर पिचकारी की धार तौ कहूँ लठामार। एकई स्वर सब ओर सुनाई परै है :–

आज बिरज में होरी रे रसिया।
होरी रे रसिया, बर जोरी रे रसिया।।
उडत गुलाल लाल भए बादर, केसर रंग में बोरी रे रसिया।
बाजत ताल, मृदंग, झाँझ, ढप, और मजीरन की जोरी रे रसिया।।
फेंट गुलाल हाथ पिचकारी, मारत भरभर झोरी रे रसिया।।
इततैं आए कुँवर कन्हैया उत, सों कुँवरि किसोरी रे रसिया।।
नन्दगाम के जुरे हैं सखा सब, बरसाने की गोरी रे रसिया।।
दोउ मिलि फाग परस्पर खेलें, कहि कहि होरी होरी रे रसिया।।

ढप की थाप गली गिरारेन में गूँजन लागी कै प्रेमरस में पगी ब्रज नारीन कौ डर भागन लग्यौ और ब्रज के हुरियारेन कौ मन रंगन की फुहारन पै नाचन लग्यौ–

गली गिरारन बीच आज ढप लागन बाजे है।
बाजै ताल मृदंग झाँझ ढप,
दौड़त आवैं लाल, आज हरि नाचैं हैं।।
उड़त गुलाल लाल भए बादर,
रंग की परत फुहार, आज हरि बरसाने लागे हैं।।
फेंट गुलाल हाथ पिचकारी,
केसरिया रँग घोरि, आज डर भागन लागे हैं।।
दरसन दै निकसि अटा में ते।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब ब्रज के सब लोग प्रेम बावरे है कैं हुरियारे बन अनुराग प्रकट करै हैं तौ ढप की थाप सुनिकें प्रेम बाबरी .रूप मदमाती ब्रजतरुनी अपनी लालसा कूँ कैसें रोक सकै हैं :–

रूप दुरै केहि भाँति री. तू कहै क्यों न सजनी !
घूँघट में न छिपात सखी, मेरे गोरे बदन की कान्ति री।
बरज रही बरज्यौं ना मानैं, कौन दई संजोग री।
मैं तरुणी और या ब्रज के, सब भए बाबरे लोग री।
मोहन गोहन लाग्योई डोलै, प्रकट करत अनुराग री।
अब नागर डफ बाजन लागे, सिर पर आयौ फागरी।

नबल जोबना हुरियारिन होरी खेलबे के लएँ अपने रिझवार स्याम कूँ आमंत्रित करै है। अपने पलकन के पथ सौं आइबे कौ निमंत्रण देय है। दोनों न जानें एक दूसरे पै कबकें रीझे भए हैं :–

चल्यौ अइयो रे स्याम मेरे पलकन पै।।
तू तौ रीझौ मेरे नवल जोबना, मैं रीझी तेरे तिलकन पै।।
तू तौ रीझौ मेरी लटक चाल पै, गें रीझी तेरी लटकन पै।।
पुरुषोत्तम प्रभु जी छवि निरखै, अबीर गुलाल की झलकन पै।।

फिर कहा देर! हुरियारन की टोली तैयार है जाय है। उनकौ रूपरंग देखतई बनै है। घोंटुन लौं धोती बाँधि, कुरता या रेसमी बगलबन्दी पहिन, मूँड पै मुड़ासी कसि के दुपट्टा सों कमर बाँधें हैं और झोरी बनाय कें बामें अबीर गुलाल भरि लेय हैं। हाथन में ढोल, ढ़प, मँजीरा, पिचकारी। आँखिन में काजर सारि, माथे पै बेंदी, तिलक, चन्दन और गालन पै गुलाल लगाइकें हुरियारन कौ दल कूदतौ मटकतौ भयौ चल देय है। होरी के ये रसभीने रसिया बढ़ रहे हैं गोरी के द्वार की ओर–

बन आयौ रे रसिया होरी कौ।।
मल्ल काछ सिंगार धरौ है, याकौ फेंटा सीस मरोरी कौ।।
काँधे झीनौ उपरना सोहै, जाके माथे बेंदा रोरी कौ।।
पुरुषोत्तम प्रभु कुँवर लाड़लौ, यह रसिया या गोरी कौ।। बन आयो रे....

हुरियान के टोल कूँ देखिकें गोरी सकुचाय जाय और अटान पै चढिकें छिप जाय। नीचें हुरियार ढप ढोल की तानन पै कूद कूद कें भाँडी मरोरत भए नाँचे हैं और रसीले रसिया गाय गाय कें, अटा माऊँ इसारे करिकें गोरी की प्रसंसा करै हैं और खेलबे के लएँ उनकूँ बुलामें हैं–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तू है श्री बृषभान नन्दिनी ज्यों निकर्‌यौ है चंद घटा में ते।।
कोटि रमा, सवित्री, भवानी, तेरे निकसी हैं अंग छटा में ते।।
पुरूषोत्तम प्रभु रस चाख्यौ जैसे माखन निकस्यौ मठा में ते।।

जा तरै ते नैन डोरि बँधि जाय है और हुरियारे रस विभोर है कें ब्रज गोपीन को आह्‌वान करै हैं पर इन निघोट हुरियारेन के दृगन की चोट खाई भई ब्रज जुबती इतनी भोरी कहाँ है। उलटे हुरियारेन तेई चले जाइबे की कहै है कै अपनी जोट के संग होरी जायकें खेलौ–

मत मारौ द्रगन की चोट, रसिया होरी में मेरे लगि जायगी।।
मैं तो नारि बिराने घर की, तुम तौ बड़े निघोट।।
अब की बार बचाय गई हूँ, घूँघट पट की ओट।।
रसिक गोविन्द वहीं जाय खेलौ, जहाँ तिहारी जोट।।
चंदसखी भज बालकृष्ण छवि, हरिचरनन की ओट।।

पर होरी के ये मदमाते हुरियार इतनी कच्ची गोली खायकें नाँय आए। खूब घोट छानि कें पी राखी है इननें प्रेमरस की बूटी। होरी में आज मिलामिंगे जे अपनी जोरी–आगे ठाड़ी है जो गोरी। समझामें हैं उनकूँ बात बनाइकें भोरी और धमकायें हैं कै मान जाऔ नहीं तौ करिंगे बर जोरी–

होरी में लाज न कर गोरी, होरी में।।
हम ब्रज के रसिया तुम गोरी, भली बनी है यह जोरी।।
जो हमसो सूधे नाहिं खेलै, स्याम करिंगें बरजोरी।।
नारायण अब निकसि द्वारगै, छूटौ नहिं बनिकें भोरी।।

और उनकौ मंत्र सार्थक होय है गोरी की लज्जा अब लालसा में बदलि जाय और फागुन में फाग खेलबे के सौभाग्य कूँ प्राप्त करिबे के लएँ होरी खेलिबे कूँ तैयार है जाय–

सजनी भागन ते फागुन आयौ, होरी खेलूँगी स्याम संग जाय।।
वानें भिगोई तेरी मुलकत अँगिया, वाकी भिगोउंगी पाग।।
वाने चलाई केसर पिचकारी, मैं हू उड़ाउंगी गुलाल।।
दया सखी फागुन कौ महीना, मानुंगी भाग सुहाग।।

इतनौ ही नाँय, ऊ स्याम सखान कूँ चुनौती देय है कै होरी में जीत कें देखौं। वामें ऐसौ अद्‌भुत उत्साह जागरित होय है कै उनकूँ अपनौ चेरौ बनाइकें पिछले सब बदले चुकानौ चाहैं है। जिन हुरियारेन ने अटा पै चढ़ी भई ब्रजगोपीन कूँ हारी भई नारी समझी ही, आज वे ही ब्रजगोपी जीतबे के लएँ होरी खेलबे कूँ तैयार हैं–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होरी खेलूँगी स्याम तोते नाय हारूँ।।
उड़त गुलाल लाल भए बादर,
भर गडुआ रँग कौ डारूँ।।
होरी में तोय गोरी बनाऊँ लाला,
पाग झगा तेरौ फारूँ।।
औचक छतियन हाथ चलावै,
तेरौ हाथ बाँधि गुलाल मारूँ।।
आजु करूँ तोय अपनौ चेरौ,
तब तोपै तनमन वारूँ।।

स्वयं तौ ब्रजगोपी आगे बढ़ी ही, संग साथ में सब हुरियारिन कूँ आदेस दियौ कै आज ऐसी होरी खेलौ जाते इन रसियन कूँ पतौ चलि जाय और जा भोरे बने बैठे स्याम कूँ रँग में बोरि देओ–

होरी खेलन आयौ आज याय रँग में बोरौ री।।
कोरे कोरे माटन मे सखि केसर घोरौ री।।
रंग रँगौगी करौ याय कारे ते गोरी री।।
नकुआ की सीमेल निकारौ पकर झझोरौ री।।
पीताम्बर लेयु छीन याय पहराय देउ चोरी री।।
हाथ जोर कर करै बीनती तब याय छोरौ री।।
हरे बाँस की बाँसुरी याहे तोर मरोरौ री।।
चंद सखी यों कहै कैसो बन बैठो भोरौ री।।

फिर कहा–ब्रज होरी की ऐसी धूम मची है हुरियारी हुरियारे एकरस है सराबोर है गए। जाकौ जैसो बस चलौ, वाने वैसे ही होरी खेली। नाच नाचकें हुरियारे रिझामन लगे, कपोलन गुलाल लगामन लगे, उत मारन लागीं पिचकारिन की धार, नैनन की कटार और गारीन की मार। रास–रंग, गीत–संगीत, प्रेम–नेम, प्रेय और श्रेय ऐसौ भयौ कै थिरकत थिरकत अंग सिथिल परि गए–

होरी खेली न जाय।।
सैनन में मोय गारी दई, पिचकारी दई,
होरी खेली न जाय।।
क्यों रे लंगर लँगराई मोते कीन्हीं,
केसरि खोरि कपोलनि दीन्हीं,
लै गुलाल ठाड़्यौ मुसकाय।।
होरी खेली न जाय।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोऊ रंग में रंगी, कोऊ लाज में पगी, कोऊ बाँह छुड़ाय भगी, कोऊ रही ठगी कीं ठगी, कोऊ पायन परी, कोऊ नैनत लरी, कोऊ रहि गई खरी, कोऊ अक मे जरी, वाह री होरी, तैने सबके तनमन की पीर हरी–

रँग में रँग दई, बाँह पकरि लई, लाजन मर गई होरी में।।
इकली भीज गई होरी में,
हुरमत लाज गई होरी में,
चूँदर रँग बोरी होरी में,
पिचकारी मारी होरी में,
है कें स्याम निसंक अंक भुज भरि लई होरी में।।
गाल गुलाल मल्यौ होरी में,
मोतिन लर तोरी होरी में,
लोक लाज खूँठी मै कान्हा धरि दई होरी में।।
बर जोरी कीन्हीं होरी में,
ऐसी बुरी भई होरी में,
घासीराम पीर सब तन की हर लई होरी में।।

चारों ओर गुलाल ही गुलाल, अटि गए अटा अटारी और चौपाल, भूमि है गई लाल, लाल भई जमुना की धार, ऐसी होरी खेलत ब्रज के हुरियार। स्यामा बनी आज अगुआ, जसोमति देन लगी फगुआ–

स्यामा स्याम सौं होरी खेलत आज नई।।
उड़त गुलाल लाल भए बादर, रंगन भीर नई।।
सखी सखा भए, सखा सखी भए, माधव आप भई।।
पलट्यो रूप देखि, जसुमति की सुधबुध बिसरि गई।।
नाचत नाच मचावत होरी, जसुमति भवन गई।।
फगुआ दियौ है मँगाय मातु ने, कंचन जटित गई।।
सूरदास या ब्रज में बसिकें यह मूरत उर गही।।

ब्रज होरी में सखी सखान कौ भेद मिट गयौ। धन्य ई अद्वैत, धन्य ई बेसुधपन, धन्य फागुन की उमंग, धन्य ब्रज होरी कौ रंग, धन्य हुरियारेन कौ संग, धन्य स्यामास्याम राग, धन्य हुरियारेन के भाग–

धन्य महीना फागुन कौ कोई जीवै सौ खेलै फाग।। ❑

(साभार : ब्रजलोकवार्ता)
–पूर्व प्राचार्य केन्द्रीय विद्यालय मथुरा छावनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रज का चरकुला नृत्य

–मोहन स्वरूप भाटिया

चरकुला नृत्य होली के अवसर पर किया जाने वाला नृत्य है जो ब्रज के ८ गाँवों में किया जाता है। ब्रज में होली के बाद भी होली के हुरंगे चलते रहते हैं और यह नृत्य भी धुलैड़ी अर्थात् रंग की होली के अगले दिन चैत्र कृष्णा द्वितीया को मुखराई, ऊमरी और अहमल कलां नामक गाँवों मे होता है। ऊमरी के निकट ही एक गाँव है रामपुर जहां चैत्र कृष्णा तृतीया को चरकुला नृत्य होता है। इसी गाँव के पास नगरी नामक गाँव है जहाँ चैत्र कृष्णा पंचमी को चरकुला होता हैं। सौसं के निकट स्थित सबला का नगला नामक गावँ में भी इस दिन यह नृत्य किया जाता है। इसके पश्चात् चैत्र कृष्णा अष्टमी को बछगावँ में तथा नवमी को सौंख में चरकुला–नृत्यों के आयोजन होते है।

इस प्रकार पारम्परिक रूप में यह नृत्य आठ गाँवों तक सीमित है किन्तु नृत्य–कौशल और भव्यता के कारण अब सम्पूर्ण देश में ही नहीं विदेशों में भी इसकी ख्याति है।

चरकुला नृत्य के नामकरण और इसकी उत्पति के सम्बन्ध में प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं हैं। किंवदन्तियों और पुराने बुजुर्गों के कंठ में ही चरकुला का इतिहास समाया हुआ है। आज जिनकी अवस्था ८०–९० वर्ष है वे यह बताते हैं कि उनके परिवार के बुजुर्ग भी इस नृत्य के संबन्ध में बताते रहे हैं। इससे यह अनुमान होता है कि यह नृत्य लगभग १५० वर्ष प्राचीन तो है ही। इसके साथ ही यह आश्चर्य भी होता है कि होली के लोकगीतों अथवा काव्य में कहीं इसका वर्णन नहीं हुआ है। अब से लगभग ११५ वर्ष पूर्व प्रकाशित मथुरा के तत्कालीन अग्रेज क्लैक्टर श्री एफ०एस० ग्राउस के शोधपूर्ण ग्रन्थ 'मथुरा ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर, में जहाँ ब्रज के इतिहास, पुरातत्व तथा सांस्कृतिक परम्पराओं का बड़ी गहराई के साथ चित्रण किया गया है। वहाँ चरकुला नृत्य का किंचित भी उल्लेख नहीं है। यह संभव है कि श्री ग्राउस तक इसकी चर्चा नहीं पहूँची हो या उस समय अपने गाँवों से बाहर तक चरकुला की प्रसिद्ध नहीं रही हो। इस समय भी आठ गाँवों में ऊमरी, नगरी, रामपुर, सबला का नगला और बलगाँव में होने वाले चरकुला नृत्यों की अधिक ख्याति नहीं है। वर्तमान में मुखराई गाँव के चरकुला नृत्य की सबसे अधिक ख्याति है और बाहर से आने वाले कला–प्रेमी तथा भारतीय एवं विदेशी पर्यटक भी इसी गाँव में पहुँचते हैं। अहमल कलां और सौंख में चरकुला–नृत्य के अच्छे आयोजन होते हैं किन्तु प्रसिद्धि मुखराई गाँव को ही मिली है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुखराई राधाकुण्ड से लगभग दो किलोमीटर दूर स्थित है। कहा जाता है कि यह राधा की नानी मुखरा रानी का गाँव है। किंवदन्तियों के अनुसार राधा कर जन्म होने पर मुखरा रानी ने यह चरकुला नृत्य किया था।

चरकुला से जुड़े तीन गाँव–ऊमरी, नगरी और रामपुर मथुरा–भरतपुर मार्ग पर है और अन्य पाँच गाँव गोवर्धन से लगभग २५ किलोमीटर की परिधि के क्षेत्र में हैं। संभवतः इन आठ गाँवों में से किसी एक गाँव में चरकुला–नृत्य का प्रारंभ हुआ होगा और वहाँ की कोई लड़की जब व्याह कर दूसरे गाँव में पहूँची होगी तो वह इस कला को अपने साथ ले गई होगी। बाद में यह आसपास के गाँवों तक पहुंच गया होगा।

मुखराई गाँव के वयोवृद्ध रासलीला आचार्य स्वामी कन्हैयालाल ने बताया था कि उनके बुजुर्ग कहा करते थे कि उनके गाँव मुखराई से लगभग १८ किलोमीटर पर एक गाँव है लोरा। इस गाँव के एक लोहार की स्त्री ने अपने पति से चरकुला बनवाया था और वही इसे लेकर सबसे पहले नाची थी। मुखराई गाँव के एक व्यक्ति ने तब इस नृत्य को देखा था और अपने गाँव में आकर उसकी प्रशंसा की। तब मुखराई वालों ने भी उसी लुहार से चरकुला बनवाया और यहाँ की कुछ स्त्रियों ने उस नृत्य को सीखा और चैत्र कृष्णा द्वितीया को यह नृत्य मुखराई मे किए जाने की जो परम्परा प्रारंभ हुई वह आज भी बनी हुई है।

चरकुला नृत्य के उद्‌गम के सम्बन्ध में रामपुर गाँव में यह जानकारी मिली कि यहाँ के मुरलीधर बढ़ई ने चरकुला का निर्माण किया था। इससे पहले नृत्य तो होता था किन्तु उसका रूप कुछ और था। उस समय निकटवर्ती गाँव ऊमरी की नृत्यांगनाएँ रामपुर में होली के अवसर पर नृत्य करने आया करती थीं। वे जो नृत्य करती थीं उसमें दीपक जला करते थे। एक बार जब वे नृत्य करने आईं तो अपने साथ लाये दीपकों में छेद करके लाई थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि उसमें डाला जाने वाला तेल बह जाने के कारण जल्दी खत्म हो गया। तेल का प्रबन्ध रामपुर गाँव की ओर से किया जाता था। छेद वाले दीपकों के कारण जहाँ एक ओर रामपुर वालों को तेल अधिक खर्च करना पड़ा वही नृत्यांगनाओं को अधिक देर नाचना नहीं पड़ा। ऊमरी गाँव की नृत्यांगनाओं की इस चतुराई का पता जब रामपुर वालों को चला तो मुरलीधर बढई ने इसे चुनौती मानते हुए कहा कि वह ऐसी चीज तैयार करेगा जिसमें ऐसा करने का कोई अवसर ही न रहे और मुरलीधर बढ़ई के हाथों कला की देवी ने जो चीज गढ़ डाली वह थी चरकुला।

चरकुला नामकरण का कारण यह तो हो सकता है कि मुरलीधर बढ़ई ने जो उपकरण तैयार किया था वह चरखे के चक्र के समान था और उस पर रखे गए कलशों के चारों ओर गोलाकार पंखुड़ियों पर दीपक रखे जाने की व्यवस्था थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंखुड़ियों पर दीपक रखे जाने से यह सरलता से पता लग सकता था कि दीपक में छेद है। यह चरकुला ठोस लकड़ी से बनाया गया था और उसका वजन काफी था। इस वजनी चरकुला को लेकर नृत्य करना पर्याप्त अभ्यास और साधना के पश्चात ही संभव था और यही कारण था कि चरकुला को शीघ्र ही लोकप्रियता प्राप्त होने लगी। वजनी चरकुला को सिर पर रखकर स्वर–ताल पर नृत्य करना और जलते दीपकों से अग्नि–दुर्घटना न होने देने में कौशल दिखाने से नृत्यांगना को श्रेय मिला।

चरकुला नृत्य का प्रदर्शन सन् १९७५ तक आठ गाँवों तक सीमित रहा। इन्हीं दिनों उत्तरप्रदेश पर्यटन विभाग द्वारा मथुरा में आयोजित होली मेला में मुखराई गाँव के चरकुला–नृत्य को शहर के मंच पर लाने का प्रयास किया। गाँव में इस बात पर बड़ा विवाद रहा कि उनके गाँव की महिला शहर में नृत्य के लिए जाए अथवा नहीं। अन्त में बड़े प्रयासों के बाद शहर में उसका प्रदर्शन हुआ और यह एक ऐतिहासिक प्रदर्शन था। हजारों–हजारों दर्शक वजनी चरकुला और उस पर जगमगाते दीपकों के साथ पहली बार चमत्कारी नृत्य देखकर मंत्र–मुग्ध हो उठे और देर तक तालियाँ गूँजती रहीं। इस समय तक वहाँ उपस्थित दर्शको में से शायद किसी ने पहले कभी इस नृत्य को देखा होगा। शहरी संस्कृति के तड़क–भडक के नृत्यों से परे संगीत और नृत्य के ज्ञान से कोसों दूर रहने वाले इन लोक–कलाकारों के नृत्य एवं संगीत ने दर्शकों का मन मोह लिया।

कुछ वर्षो बाद उत्तरप्रदेश की राजधानी लखनऊ में उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी द्वारा आयोजित कार्यक्रम में पहली बार अहमलकलां गांव के लोक–कलाकारों ने चरकुला का प्रदर्शन किया तो लखनऊ के नृत्य और संगीत मर्मज्ञ हर्ष विभोर हो उठे और उसके बाद तो चरकुला–नृत्य के प्रदर्शनों का जो दौर शुरू हुआ वह उत्तर–दक्षिण, पूर्व–पश्चिम तक फैलता गया। इस प्रदर्शनों के कारण ही अब व्यावसायिक स्तर पर चरकुला–नृत्य की अनेक मण्डलिया बन गई हैं। अपना उत्सव और दूरदर्शन से भी चरकुला नृत्य को लोकप्रियता मिली। दिल्ली में गणतंत्र दिवस की परेड में भी चरकुला ने दर्शकों की रिझाया।

चरकुला नृत्य परम्परागत रूप में रात्रि के समय गाँव में किसी चौक या चौड़े मैदान में होता है। इसका मुख्य ताल वाद्य वह बड़ा नगाड़ा होता है जिसे लोकभाषा में "बम्ब" कहा जाता है। नृत्य से पूर्व चरकुला–नृत्य के लोकगायक अलगोजा, करताल, ढोकल, मँजीरे और थाली की संगत में महाभारत के किसी प्रसंग, राधा–कृष्ण की लीला, गिरिराज–गोवर्धन महिमा, होली आदि पर आधारित रसिया आदि गीत प्रस्तुत करते है।

चरकुला–नृत्य का वैभव उस समय और बढ़ जाता है जब कि नृत्यांगना सिर पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारी चरकुला के साथ दोनों हाथों में दो लोटों पर जलते दीपक रखकर नृत्य करती हैं। नृत्य के पश्चात् लोकगायकों द्वारा नृत्य करने वाले स्त्रियों को एक गीत गाते हुए आर्शीवाद दिया जाता है। इस गीत को "असीस" कहा जाता है। गीत की प्रथम पंक्ति है– जुग जुग जीऔ गोरी नाचनहारी। गीत के द्वारा यह आशीर्वाद दिया जाता है कि नृत्यांगना युग–युगों तक जीवित रहे। वह गर्भवती हो और उसके दो पुत्र एक साथ जन्म लें जिनमें एक तो मुकदम बने और दूसरा पटवारी। इस आर्शीवाद गीत में नृत्यांगना की ओर से यह उत्तर दिया जाता है कि यदि उसके पुत्र–जन्म हुआ तो वह दावत देगी। यह दावत भी पूड़ी, बूरे और आलू की सब्जी की होगी।

चरकुला नृत्य के पारम्परिक रूप और इन दिनों मंच पर हो रहे चरकुला–नृत्य के कार्यक्रमों में यद्यपि मौलिक रूप से कोई अन्तर नहीं है। किन्तु उसमें कुछ कारणों से अभिवर्द्धन किया गया है। सन् १६७५ मे जब पहली बार मथुरा में चरकुला नृत्य का प्रदर्शन हुआ था तो वह गाँव के मैदान में होने वाले चरकुला नृत्य की पूर्णरूपेण अनुकृति था। किन्तु शनैःशनै उसमें कुछ न कुछ जुड़ता गया। ऐसा किया जाना इसलिए आवश्यक हो गया था कि मंच पर चरकुला का प्रदर्शन ५–१० मिनट किया जाना कार्यक्रम की अपेक्षाओं के अनुकूल नहीं था। सैकड़ों किलोमीटर दूर से बुलाकर यदि ५–१० मिनट का कार्यक्रम कराया जाय तो उससे न कलाकार संतुष्ट होते और न दर्शक। व्यय की तुलना में भी ५–१०मिनिट का कार्यक्रम उचित नहीं होता इसलिए चरकुला–नृत्य से पूर्व लोकवाद्य–वादन, कृष्ण के वेश में बाल–कलाकार का मयूर–नृत्य, बरसाना–नन्दगाँव की लठामार होली, चरकुला–नृत्य के साथ बजाए जाने वाले "बम्ब" को सिर पर रखकर नृत्य, पहले एक चरकुला लेकर और फिर दूसरी नृत्यांगना द्वारा दूसरा चरकुला लेकर दो नृत्ययांगनाओं का नृत्य आदि के द्वारा कार्यक्रम का समय लगभग १घटें का करके मंचन के व्यावसायिक पक्ष को पूर्ण किया गया है।

चरकुला–नृत्य की प्रमुख विशेषता है उसका नृत्य–कौशल। इस नृत्य में भाव–भंगिमाओं का महत्व नहीं है क्योंकि नृत्यांगना का मुख घूँघट से ढका रहता है। किन्तु काफी वजन के चरकुला को सिर पर रखकर नृत्य–संतुलन बनाए रखना इसकी सबसे बड़ी विशेषता है और जलते दीपकों का वैभव इस नृत्य को मनमोहक बना देता है। चरकुला–नृत्य का लोकवाद्य और संगीत इसे सोने में सुगन्ध की भांति आकर्षक बना देते है। ☐

–ज्ञानदीप, मथुरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बरसाने की लठामार होली

– डा० हरि सिंह पाल

ब्रज में बरसाने की लठामार होली तो सभी के विशेष आकर्षण का केन्द्र है। फागुन मास की शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को होने वाली इस लठामार होली के लिए विशेष तैयारी की जाती है। इस की पृष्ठभूमि के विषय में कहा जाता है कि भगवान श्रीकृष्ण की आराध्या शक्ति श्रीराधा जी की नगरी बरसाना में, रासलीलानुकरण एवं ब्रज चौरासी कोस की यात्रा के पुर्नसंस्थापक श्री नारायण भट्ट ने लगभग ४५० वर्ष पूर्व राग–अनुराग के रँग से सराबोर परम्परा को, नन्दगांव बरसाना के ब्रजवासियों को एकत्रित कर इस लठामार होली का शुभारम्भ किया था। उस समय श्री भट्ट जी ने देखा कि नन्दगाँव और बरसाना के ग्वालवालों के साथ स्वयं भगवान श्रीकृष्ण और श्रीराधा रानी दोनों नेह की डोर में बँधकर यहाँ की रँगीली गली में लठामार होली खेल रहे हैं।

उस दिन के बाद श्री भट्ट जी की रीति के अनुसार नन्दगाँव के गोस्वामी, ग्वालवालों के रूप में मध्याह्न में नन्दगाँव के नन्द भवन में एकत्रित होते हैं और मंदिर में प्रतिष्ठापित श्रीकृष्ण–बलराम की प्रतिमा के समक्ष माता जसोदा से बरसाना होली खेलने की आज्ञा लेकर भगवान श्रीकृष्ण का आवाह्न करते हैं –

फैंट भरि लई जननी सौ, अज्ञा लई ब्रज ईश सौं
नन्द राय तब रतन पैंच के, रुचि बाँध्यो गिरधर शीश।

तदुपरान्त ये ग्वालबाल नंदीश्वर महादेव का, नन्दमहल में ही आवाह्न करते हैं फिर नन्द बाबा की चौपाल पर भगवान श्रीकृष्ण की प्रतीकात्मक ध्वजा लेकर मदमस्त उछलते कूदते, लोकगीत गाते हुए बरसाना की तरफ चल पड़ते हैं। नन्द गांव से बरसाना की दूरी लगभग ६ कि.मी. है। हुरियारे इस दूरी को हंसते–चौपाई और होली के लोकगीत गाते हुए पूरी करते है। इस मंडली में प्रत्येक आयु वर्ग के लोग, किशोर, युवा, प्रौढ और वृद्ध होते हैं। ढप, झाँझ और ढाल लिए हुए ये हुरियारे रसिया गाते हुए बीच रास्ते में संकेत वन में विश्राम करते हैं। यहाँ ये लोकगीत गाते हुए नृत्य करते हैं।

मृग नैनी कौ यार नबल रसिया
बड़ी–बड़ी अँखिया नैन सुरमा
होरी खेलन जाएँ बरसाने नगरिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नन्द गाँव के ये हुरियारे बरसाना के प्रिया कुड (पीली पोखर) पहुँचते हैं। जहाँ बरसाने के वयावृद्ध व्यक्ति, अन्य लोगों के साथ इन हुरियारों का स्वागत करते हैं ओर उन्हें ब्रह्मगिरी पर्वत पर बने श्री राधा के विशाल भवन 'श्री जी' मंदिर में होली खेलने के लिए आमंत्रित करते है। पीली पोखर पर हुरियारे पिस्ता, बादाम, संतरा, अंगूर मिली भाँग की ठंडाई छानकर होली खेलने के लिए परम्परागत वेशभूषा में सजते हैं और मस्ती में गा उठते हैं–

चलो बरसाने खेलें होरी
ऊँची गाम बरसानौ कहिए
तहाँ बसे राधा गोरी।
पाँच बरस के कुँवर कन्हैया
सात बरस की राधा गोरी...

पीली पोखर से ये लोग 'श्री जी मंदिर' पहुँचकर पूजा अर्चना करते हैं। इसके बाद श्री मंदिर प्रांगण नन्द गाँव और बरसाना के हुरियारों द्वारा रँग भरी पिचकारियों की इन्द्रधनुषी रँग वर्षा से सराबोर हो उठता है। यह परिसर समाज गायकों के हे हे ओ ही के स्वर से गूँज उठता है। इस परिसर में खड़ा कोई भी व्यक्ति (स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध) बिना भीगे, रँग से सराबोर हुए बिना नहीं रहता। पूरा वातावरण होलीमय हो उठता है।

फाग खेलन बरसाने आए हैं नटवर नन्द किशोर
घेरि लई, सब गली रँगीली, ढप, ढोल, मृदंग बजाए हैं।

श्रीजी मंदिर आने वाले श्रद्धालु पहले प्रिया कुंड में स्नान करते हैं फिर गह्वर वन की तीन किलोमीटर की परिक्रमा कर श्रीजी के दर्शन करते है। नन्द गाँव के गोप रूप में आए हुरियारों के साथ आई भगवान श्रीकृष्ण की प्रतीकात्मक छड़ी को मंदिर में लाया जाता है। फिर हुरियारे रँगीली गली आते हैं जहाँ बरसाना की गोपी स्वरूपा गोसाईन हाथों में मोटी–मोटी लाठी लिए परम्परागत परिधान पहने सजी–धजी इन हुरियारों को होली खेंलने का आमंत्रण देती है। इस बीच रँगीली गली की पूरी गली मे मकान, धर्मशाला, जनसमुदाय से पट जाते हैं। देश–विदेश से आए असंख्य नरनारी विश्व की इस अनोखी लठामार होली देखने आ जुटते हैं। रँगीली गली के मकानों की छतों पर कोई कोना खाली नहीं रह जाता है। कई दिन पहले लोग आकर अपने बैठने लायक जगह पाने के लिए आ जुटते हैं। नीचे गली में बरसाना की गोपियाँ और नन्द गाँव के हुरियारे होली खेल रहे होते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं और ऊपर छतों पर बैठे श्रद्धालु सूखे रंग गुलाल से आपस में होली खेल लेते है। प्रान्तीयता जातीयता का भेद मिट जाता है इस होली में।

लठामार होली शुरू होने से पूर्व गोपियों और ग्वालो मे होली की साखियों के माध्यम से संवाद होता है। इन साखियों रसियाओं के माध्यम से दोनों ही दल एक दूसरे को चिढ़ाकर छोटा बतलाने का प्रयास कर होली खेलने के लिए प्रेरित करते हैं। संध्याकाल में पांच बजे से लठामार होली शुरू होती हैं। होली गायन के पश्चात, गोपियों के झुंड, हुरियारों पर लाठी लिए टूट पड़ते है। हुरियारे गोपियों के इन मजबूत लाठियों के वार अपने साथ लाए ढालों पर सहते हैं। पूरी रँगीली गली लाठियों की तड़ातड आवाज से गूँज उठती है। चारों ओर केवल लाठियों की ही आवाज सुनाई देती है। लाठी प्रहार करते समय जब कोई गोपी थक जाती है तो उसकी मदद के लिए दूसरी गोपी लाठी बरसाने आ जाती है। बरसाने की गुसाईं समाज की शायद ही कोई विवाहित महिला इस होली में आ जाने से रह जाती हो। सुदूर क्षेत्रों में गए गुसाईं लोग इस दिन विशेष अवकाश लेकर इस होली में सम्मिलित होने के लिए अवश्य आते हैं।

गोपियों द्वारा हुरियारों पर किए गए लाठियों के प्रहार बड़े ही जबरदस्त होते हैं। ये गोपियाँ पूरी शक्ति के साथ उछल–उछल कर हुरियारों पर वार करती हैं। देखते ही देखते नंदगाँव के हुरियारों की ढालें छलनी हो जाती हैंजब जब इन गोपिकाओं का जोश ठंडा पड़ता है तब तब हुरियारे श्रृंगार रस के लोकगीत गा गाकर उन्हें उत्तेजित कर देते है और यह लठामार होली संध्या ६बजे तक बिना थमे चलती रहती है। इस लठामार होली में सब लोग सभी तरह के भेदभाव भुलाकर रँग गुलाल से सराबोर हो उठते है। आयु वर्ग, धर्म, प्रान्तीयता, क्षेत्रीयता और राष्ट्रीयता के भेदभाव मिट जाते हैं इस लोकोत्सव में। सभी के चेहरे गुलाल से रँग जाते हैं और परिधान टेसू के रँगों से। लगभग एक घंटे तक चलने वाली इस रंगारंग होली का पटाक्षेप सायः ६ बजे शंखध्वनि के साथ होता है। लाठियाँ थम जाती है हुरियारे यहां से ले जाते हैं नया उत्साह अगले वर्ष फिर होली खेलने का। गोपियाँ कह उठती हैं –"लला फिर खेलन अइयो होरी।" ❐

६८४, इन्द्र पार्क, पालम, नई दिल्ली–४५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अबीर गुलाल सूँ झोरी भरी

–हर्षनंदिनी भाटिया

होली भारत का सांस्कृतिक, पौराणिक एवं सामाजिक पर्व है। वसंत का सौंदर्य होली के रंगों से खिल उठता है। गुलाल के बादल, पिचकारियों के इद्रधनुषी रँग, ढोलक–मजीरों की ध्वनि, होली के गीतों और धमारों का मधुर घोष, आनंद और उल्लास का वातावरण, हास्य–परिहास व व्यंग्य–विनोद के तीर–सब मिलकर एक अद्‌भुत दृश्य उपस्थित करते हैं।

होली के पर्व पर वर्ग, जाति, संप्रदाय का काई बंधन नहीं। सभी लोग एक–दूसरे को गले लगाते हैं। यह ऐसा त्योहार है जब बच्चे–बूढ़े स्वजन–परिजन, स्नेहीजन, जाति, धर्म, रंगभेद भूलकर एकरस में डूब जाते हैं। होली की मादकता, उत्फुल्लता में कविगण भी मग्न हो जाते है। हिंदू–मुसलमान सभी कवि होली की रंगीनी में डूबे हैं। वसंत पर जनमें आगरा के सुप्रसिद्ध कवि नजीर अकबराबादी ने हिंदुओं के सभी लोक उत्सवों तथा त्योहारों में विभोर होकर रचनाएँ की हैं। उनकी रचनाएँ पारस्परिक सद्‌भाव से परिपूर्ण हैं। होलिकोत्सव पर उनके उद्‌गार इन पंक्तियों में प्रकट हुए हैं :–

'नजीर होली का मौसम जो जग में आता है।
वह ऐसा कौन है होली नहीं मनाता है।
कोई रंग छिड़कता है कोई गाता है।
जो खाली रहता है वह देखने को जाता है।'

इस मौके पर स्वाँग विशेष रूप से खेले जाते हैं, जिसपर नजीर साहब ने कई कविताओं की रचना की, जिनमें से कुछ हैं–

'है हरदम नाचने गाने का तार बँधाया होली ने
पोशाकें छिड़की रंगों की और हरदम रंग कहानी है।'....
'है क्या–क्या सिर में रंग भरे और स्वाँग भी क्या–क्या आते हैं।
कर बातें हरदम चुह भरी खुद हँसते और हँसाते हैं।'....

नजीर अकबराबादी ऐसे कवि रहे हैं जिन्होंने सर्वाधिक कविताएँ होली पर लिखीं, जो नजीर ग्रंथावली' में संकलित हैं।

अली गौहर ने अबीर–गुलाल से भरी झोली का जो सजीव चित्र उपस्थित किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'अबीर गुलाल सूँ झोरी भरी, अरु रंग भरी पिचकारी लई है।
खेलत होरी कौ नेह बढ़ौ, चतुराई सूँ खेल खिलार नई है।।
प्रीतम ने जब बाँह गही, उनसे तो कहीं तब हा हा दई है।
आवत आइके चोर चलाय, भिजाय के लाल को भाग गई है।।

होली का त्योहार संपूर्ण भारत का होते हुए भी ब्रजभूमि से सीधे संबंधित है। ब्रज की होली और राधा–कृष्ण की ठिठोली पर्याय है। राधा आप ही अपनी सखी गोपियों के साथ होली खेलने के लिए निकली थीं कि श्रीकृष्ण और उनके गोपों के चंगुल में जा पड़ीं। राधा–कृष्ण की होली का सरस तथा काव्यात्मक वर्णन रसखान के शब्दों में–

'मोहन हो–हो हो–हो होरी।
काल्ह हमारे आँगन गारी दै आयौ कौ है री।
अब क्यों दूरि बैठे जसुदा ढिंग निकसो कुंजबिहारी।'

फागुन लाग्यो सखी जब ते, तब तें ब्रजमंडल धूम मच्यो है।
नारि नवेली बचैं नहि एक, विसेख यहै सबै प्रेम अच्यो है।
साँझ सकारे वही रसखानि, सुरंग गुलाल लै खेल रच्यो है।
को सजनी निलजी न भई, अह कौन भटू जिहिं मान बच्यो है।'

यही ऐसा अवसर है जब 'गारी' भी अच्छी लगती है, जिस पर आदर भाव भी बलिहारी होता है–

'कहै रसखानि एक गारी पर, सौ आदर बलिहारी।'

सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ मियाँ तानसेन संगीत में धुपद गायन के साथ काव्य रचना भी करते थे। होली के पर्व पर वह जन सामान्य के साथ समारोहों में सम्मिलित होते थे और होली के पद भी गाते थे–

'लंगर बटमार खेले होरी।
बाट घाट निकसि न पावै पिचकारिन रंग बोरी।।
मैं जु गई जमुना जल भरने गहि तुम मींजी रोरी।
तानसेन प्रभु नंद का ढोटा बरज्यो न मानत मोरी।।'

होली के अवसर पर सभी लोग धर्म–जाति तथा वर्गभेद भूलकर परस्पर सद्भाव प्रकट करते हैं। हिंदू–मुसलमान, सर्वसाधारण ही नहीं, बादशाह नवाब भी होली खेलते थे और उसके रँग में सराबोर हो जाते थे। लखनऊ के नवाब आसफुद्दौला के होली मनाने व खेलने का वर्णन प्रसिद्ध शायर मीर तकी 'मीर' ने मसनवी 'दरबयान–ए –होली' में किया हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शाह आलम सानी ने उस हुरहारिन का वर्णन किया है जो रँग–गुलाल–अबीर से कोई परहेज तो नहीं करती, पर उसको बरजोरी पसंद नहीं। वह मर्यादित ढंग से होली खेलने के पक्ष में है। होली पर मर्यादा का विशेष ध्यान नहीं रखा जाता, अतएव वह कह उठती है –

'रंग भरी पिचकारी लिये अब, आँगन में सखि आई खरी है।
चातुर नार खिलार बड़ो अति, रूप तिया गुन की अगरी है।
गावत फाग सुहाग भरी अरु, अंगन में सब रंग भरी है।
हाथ सुगंध गुलाल लिये कहा, फूलन की बौछार करी है।'

और श्रीकृष्ण से विनती करती है कि मुझसे बरजोरी मत करो–

'अबीर गुलाल सुगंध रलो, अरु रंग भरी पिचकारी ई मारो।
मो सों कसै बरजोरी लला मत, दौरि गहौ गहि बाँह सँ भारो।।'

बहादुरशाह जफर मुगलकाल के अंतिम शासक और सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के नेता थे। उनकी बादशाहत में भी फकीरपन मौजूद रहा। उनकी 'होली' कविता कितनी स्वाभाविक है –

'क्यों मो पर रंग मारी पिचकारी, देख कुँवरजी दूँगी गारी।'

सम्राट् अकबर के नवरत्न फैजी ने होली पर अपने भाव इस प्रकार प्रकट किए हैं–

'आलस के मुख जाने कौं पीय, पियारी के प्रीति गए चलि पागैं।
छाय रह्यो हिआ दुःख सों जब, देखौ न ह्यौ नँदलाल सुभागैं।।'

इस तरह मुसलमान कवियों ने भी होली का जो सजीव चित्रण किया है, वह अमूल्य है। उनकी होली पर लिखी कविताओं और ग़जलों ने असंख्य पाठकों के मन को भी होली के रँग में रँग दिया। ☐

–नंदन, भौरतीय नगर, मैरिस रोड, अलीगढ़

मत मारै दृगन की चोट, होरी में मेरे लग जाइगी –
होली की शुभकामनाओं सहित
मोती लाल पेस्टी-साइड्स इन्डिया (प्रा०) लि०
पंजीकृत कार्यालय : 305, मंजूशा, 57, नेहरु प्लेस, नई दिल्ली–19
दूरभाष : 26418673, 26416782, 26233058
फैक्स : 91–11–26472537, 91–11–26473611

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनूठी परपराओं के लिए जग-प्रसिद्ध ब्रज की होली

–सैयद इख्तियार जाफरी

रँग–गुलाल का अनूठा पर्व होली सारे देश में ही अत्यंत हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है, किन्तु ब्रज की होली अपनी अजब और अनूठी परंपराओं के कारण सारे विश्व में प्रसिद्ध है। यहाँ होली का रंग बसंत पंचमी से लेकर चैत्र कृष्ण दशमी तक पूरे पचास दिन सम्पूर्ण ब्रजमंडल के कण–कण में छाया रहता है। चैत्र कृष्ण द्वितीया से चैत्र कृष्ण पंचमी तक तो यहाँ होली अपने चरमोत्कर्ष पर रहती है। इसे देखने के लिए देश–विदेश से असंख्य लोग यहाँ आते हैं।

ब्रज में होली की विधिवत शुरूआत फाल्गुन कृष्ण एकादशी को मथुरा–माँट मार्ग पर मथुरा से १८ किलोमीटर दूर मानसरोवर गाँव में लगने वाले राधारानी के मेले से होती हैं। यहाँ श्री राधारानी का भव्य मंदिर भी है। बताया जाता है कि यहाँ पर भगवान श्री कृष्ण ने राधारानी के साथ रास किया था। साथ ही श्री राधा जी ने यहाँ स्थित प्राचीन कुण्ड में से प्रकट होकर श्री हित हरिवंश जी को दर्शन दिए थे। बाद को गोस्वामी वनमालीदास ने यहाँ होली उत्सव मनाना प्रारम्भ किया, जो आज भी अपनी सनातन परंपराओं को निभा रहा है।

मानसरोवर गाँव में जुड़ने वाले राधारानी के मेले के दो सप्ताह बाद फाल्गुन शुक्ल नवमी को राधारानी की बाल लीलास्थली और राधा–कृष्ण की प्रणय भूमि बरसाने में नंदगाँव के हुरियारों और बरसाने की गोपिकाओं के मध्य लट्ठमार होली होती है। बरसाने की लट्ठामार होली में अन्य स्थानों की होली के अनुरूप रंग–अबीर एवं नृत्य संगीत के अलावा लाठियों से होली खेलने की जो विशिष्टता है, वह इस बात की द्योतक है कि राधा–कृष्ण की इस लीला भूमि के कण–कण में आज भी इतना रस व्याप्त है कि यहाँ लाठियाँ चलाकर भी रस की सृष्टि होती है।

रसराज भगवान श्री कृष्ण और रस सम्राज्ञी श्री राधाजी की लीलास्थली बरसाने में फाल्गुन शुक्लनवमी को बरसाने की गोपिकाओं के साथ लट्ठमार होली खेलने हेतु नन्दगाँव के तकरीबन छह सौ गोस्वामी परिवारों के हुरियारें अपनी–अपनी ढालों को लेकर एकत्रित होते हैं और वहाँ से पैदल ही गाते–बजाते, नाचते–झूमते बरसाने पहुँचते हैं। बरसाने में वे –पीलीपोखर' पर स्नानादि कर बरसाने की गोपिकाओं के साथ लट्ठमार होली खेलने के लिए सजते हैं। वे अपनी ढालों को भी सजाते हैं। साथ ही चिलम पीते हैं, हुक्का गुड़गुड़ाते हैं और सिल–बटटा चलाकर भाँग–ठंडाई छानते हैं। इन सबके नशे से वे इतने मदमस्त हो जाते हैं कि उनके नेत्र, होठ आदि फड़क उठते है। वे बताते हैं कि यदि वे यह सब न करें तो गोपिकाओं द्वारा किये जाने वाले लाठी प्रहारों को अपनी ढालों पर झेल नहीं पाएँगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये हुरियारे अपराह्न लगभग तीन बजे नंदराय जी के मंदिर (नंदगाँव) का झण्डा लेकर अपनी पारंपरिक वेश–भूषा में नगाड़ों, मजीरों की ताल पर होली–रसिया गाते, अबीर–गुलाल उड़ाते और नाचते–झूमते ढाई सौ सीढ़ियाँ चढ़कर बरसाने के ब्रह्मेश्वर गिरि के उच्च शिखर पर स्थित श्री राधारानी मंदिर मे पहुँचते हैं। वहाँ श्री राधारानी की मनोहरी प्रतिमा के समक्ष उनका और बरसाने के गुसाइयों का समाज गायन होता है। इस समाज में नन्दगाँव के गुसाईं अपने को कृष्ण का प्रतिनिधि मानकर श्रीकृष्ण के प्रतीक के रूप में नंदगाँव के गुसाइयों को प्रेम भरी गालियाँ सुनाते हैं। साथ ही सभी पर टेसू के फूलों से तैयार रँग से होली खेलते हैं। यहाँ से नन्दगाँव के हुरियारे मंदिर की सीढियाँ उतर कर रँगीली गली में प्रवेश करते है। जहा पर रँगो की बौछारों व संगीत की मृदुल ध्वनियों के मध्य नन्दगाँव के हुरिहारों एवं बरसाने की गोपिकाओं के मध्य श्रृंगार रस से परिपूर्ण ठिठोली यानी हंसी मज़ाक होते हैं। ठिठोली के बाद बरसाने की गोपियां (श्रीराधा जी के मंदिर के गोस्वामियों की स्त्रियाँ) एवं नन्दगाँव के हुरियारे लट्ठमार होली खेलने हेतु बरसाने की रँगीली गली में एक छोटे से चौक (जहां तीन गलियाँ मिलती हैं) पर एकत्रित होते हैं। हाथों में लम्बी–लम्बी लाठियां और मुँह पर लम्बे–लम्बे घूँघटों की ओट में महिलाएँ नन्दगाँव के हुरिहारों पर अपनी–अपनी लाठियों से उछल–उछल कर बड़े ही प्रेमपूर्ण प्रहार करती हैं। इन प्रहारों को नन्दगाँव के हुरिहारे रसिया गा–गाकर अपनी ढालों पर रोकते हैं। गोपिकाओं द्वारा हुरिहारों पर किये गये लाठियों के प्रहार बड़े ही जबरदस्त होते हैं उनमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं होती है। गोपिकाओं की लाठियों के प्रहारों को देखते ही देखते नन्दगाँव के हुरियारों की ढालें छलनी हो जाती हैं। यदि इस लट्ठमार होली में किसी के खून आदि निकल आये तो उसे एक शुभ शकुन समझा जाता है। उससे किसी में कोई दुर्भावना पैदा नहीं होती है। लट्ठमार होली घंटों चलती है।

जब यह होली हो जाती है तब बरसाने की गोपिकाएँ अपनी लाठियों को दर्शकों के माथों पर टिका–टिका कर इनाम माँगती है जो देना चाहे वह दे। इसमें वे कोई जबरदस्ती नहीं करती हैं। अगले दिन यानी फाल्गुन शुक्ल दशमी को इसी प्रकार की लट्ठमार होली नन्दगाँव में गाँव के बाहर एक रेतीले स्थान पर खेली जाती है। नन्दगाँव में होने वाली लट्ठमार होली में हुरिहारे होते हैं, बरसाने के गुसाईं और लाठियाँ चलाती हैं नन्दगाँव की गोपिकाएँ।

बरसाने के हुरियारे नन्दगाँव में लट्ठमार होली खेल चुकने के बाद बरसाने वापस जाते हैं। वहाँ बरसाने की गोपिकाए 'रँगीली गली' में उनका नृत्य–संगीत से स्वागत करती हैं। इसके पश्चात् ये हुरियारे श्री राधाजी के मंदिर की ध्वजा को मंदिर में अपना मुंह ढक कर बड़े–बड़े मैदानों में सामूहिक रूप से 'चरकुला नृत्य' करती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वापस लगाते हैं। इस के साथ ही नन्दगाँव–बरसाने की लट्ठमार होली का पारंपरिक उत्सव समाप्त हो जाता है।

मंदिर के गोस्वामियों द्वारा बिहारी जी के दर्शनार्थियों पर रँग और गुलाल इस कदर उलीचा जाता है कि पूरे मंदिर में रँग–गुलाल के बादल उमड़ते आते हैं। फिर भी लोग गोस्वामियों के द्वारा स्वयं पर रँग डलवाने के लिए लालायित रहते हैं, क्योंकि वे उसे राधा–कृष्ण का प्रसाद मानते हैं।

होली के दौर में 'होली–लीला' का बडा ही चित्ताकर्षक मंचन किया जाता है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण एवं श्री राधाजी के स्वरूप परस्पर विभिन्न प्रकार के फूलों से होली खेलते हैं।

होलिका दहन के अगले दिन यानी धुलैंड़ी को समूचें ब्रज में रंग और गुलाल की बड़ी ही विकट होली खेली जाती है। मथुरा के द्वारिकाधीश मंदिर से एक विशेष शोभा यात्रा निकाली जाती है शोभा यात्रा का नाचता–गाता जुलूस विश्राम बाजार,छत्ता बाजार, होली गेट, कोतवाली रोड, भरतपुर गेट, घीया मंडी, चौक बाजार और स्वामी घाट आदि से गुजरता हुआ द्वारिकाधीश के मंदिर पर आकर समाप्त होता है। इस जुलूस पर इस कदर मनो रंग–गुलाल उलीचा जाता है कि समूचा मथुरा शहर इन्द्रधनुषी बन जाता है।

धुलैंड़ी के दिन सारे देश में होली समाप्त हो जाती है। किन्तु ब्रज में इसके दस दिन बाद तक भी किसी न किसी रूप में होली चलती रहती है। धुलैड़ी के दिन से चार दिन तक समूचे ब्रज में 'तानो' के गायन का क्रम चलता है। यह ब्रज की एक विशेष गायन शैली है। अपने देश में यहाँ के अलावा कहीं भी यह तान–गायकी सुनने को नहीं मिलती।

ब्रज में होली की मस्ती में धुलैंड़ी से लेकर चैत्र कृष्ण दशमी तक जगह–जगह चरकुला नृत्य, हल नृत्य एवं हुक्का नृत्य आदि अत्यंत मनोहरी नृत्य भी होते हैं।

भगवान श्री कृष्ण की गोवर्धन लीला से सम्बन्धित 'चरकुला नृत्य' ब्रज का पारंपरिक लोक नृत्य है। यद्यपि यह एकल नृत्य है किन्तु होली के अवसर पर ब्रज के मुखराई, ऊमरी, नगरी, रामपुर, सौरव, अहमलकला, बसला एवं बछगाँव आदि गाँवों में सामूहिक रूप से किया जाता है। मुखराई ग्राम का 'चरकुला नृत्य' सबसे अधिक प्रसिद्ध है। चरकुला, रथ के पहिये जैसा लगभग एक मन वजन का लकड़ी का बना हुआ होता है। इस चरकुले के ऊपर चार–पाँच तमेड़ी सी बँधी हुई होती हैं। इनमें इक्यावन से लेकर एक सौ साठ दीपक तक जलने की व्यवस्था रहती है। चरकुला नृत्य का प्रशिक्षण प्राप्त महिलायें इस चरकुले को अपने सिर पर रखकर और धोती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसे देखने वालों तक की साँसे थम जाती हैं। हर क्षण यही लगता है कि चरकुला अब गिरा, अब गिरा। जब यह नृत्य होता है तब रंग–बिरंगी पोशाकों से सजे–धजे पुरुष ढोलक, ढप, चिमटों, नगाड़ों, मंजीरों, थालियों एवं अलगोजों आदि वाद्य यंत्रों की गमक पर संगत देते है। चरकुला नृत्य को देखने से यह महसूस होता है कि ब्रज की महिलाओं में कितना साहस और आत्मविश्वास है।

ब्रज में होली के अवसर पर वहाँ के विभिन्न ग्रामीण अंचलों में महिलाओं के द्वारा 'हल–नृत्य' भी किया जाता है। यह नृत्य लोहे का बजनी हल दाँतो के बीच दबा कर होता है। होली पर ब्रज के कई गाँवों में हुक्का–नृत्य' किये जाने की भी परंपरा है। चैत्र कृष्ण तृतीया से लेकर चैत्र कृष्ण दशमी तक निरन्तर सात दिनों तक ब्रज के समस्त मंदिरों में 'फूलडोल' की छटा छाई रहती है। इस दौरान मंदिरों के विभिन्न प्रकार के फूलों से नयनभिराम श्रृंगार होते हैं। इस अवसर पर उत्कृष्ट 'होलियों' का गायन भी किया जाता है। 'फूलडोल' के साथ ही ब्रज की होली संपन्न होती है। ❑

होरी खेलन आयौ श्याम आज याहि रँग में बोरौ री।
कोरे कोरे कलस मँगा, रँग केसर घोरौ री।
रँग–बिरंगौ करौ आज, कारे ते गौरौ री।
पार परौसिन बोलि याहि, आँगन में घेरौ री।
पीतांबर लेउ छीनि, याहि पहराय देउ चोली री।
हरे बाँस की बाँसुरिया, जाहि तोरि मरोरौ री।
तारी दै दै याहि नचाबौ, अपनी ओरौ री।
***'चंद्रसखी'** की यही बीनती, करै निहोरौ री।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभिन्न प्रांतों में होली के रंग

–तेजेन्द्रसिंह

ऋतुराज वसंत के आगमन से कौन मस्ती में नहीं रँग जाता। यह मस्ती तब और भी गहरी हो जाती है, जब कुछ दिनों बाद होली का रँग भी इस में मिल जाता हैं। रागरंग, उल्लास का यह पर्व सामाजिक जीवन में संस्कृति के पूर्ण समन्वय का द्योतक है।

होली उत्सव भारत के विभिन्न भागों में मनाया जाता है। लेकिन अलग–अलग भागों में इसे मनाने की रीति भिन्न भिन्न रँगों का यह त्योहार इतना मद्‌भरा होता है कि इस का नशा कई दिन पहले से चढ़ जाता है।

राजस्थान : मरु प्रदेश राजस्थान भी होली की रंगीनियत से खुद् को अछूता नहीं रख पाता। होली के ठीक १५ दिन पहले ही राजस्थान के पुरुष गैर नृत्य प्रारंभ करते हैं। यह नृत्य होली तक चलता रहता है। राजस्थान के इस प्रसिद्ध नृत्य में शामिल होने वालों को गैरिए कहा जाता है। इस नृत्य में नृत्य करने वाले पुरुष अपने अपने डंडिये या काणीए ले कर चौहटे में आ पहुँचते हैं। इस नृत्य में पूरे शरीर एवं पैरों की थिरकन का केंद्रबिंदु होती है, वृत्तनुमा परिधि। ढोल की ताल के साथ साथ जब डंडियों के टकराने की ध्वनि पैदा होती है, तो सुनने वाला मुग्ध हो उठता है। इस नृत्य की समाप्ति पर पुरूष चंग ले कर गीत गाते हैं। राजस्थान वीरों की जन्मभूमि भी है। ऐसे में वीरता, कर्मठता का भाव होली गीतों में भी बना रहता है। स्त्रियाँ एवं बालक बालिकाएँ मिलकर गीत गाते हैं :–

"होली आई, ए सहेल्यां मिल खेलां लूर, होली आई ए
कोईकोई ओढ्यां झीणी चुनरी कोइकोई ओढ्यां दिखाणी चीर होली आई ऐ,
कोईकोई पहरयाँ रिमझिम बिछियाँ, कोई कोई पहरयाँ पायलड़ी होली आई ऐ।
रिमछिम बिछिया बाजे, ठनकठनक बाजे पायलड़ी होली आई ए, सहेल्याँ मिल खेलाँ लूरं"

फागणियां, पील्यिो और वसंतियों के नाम से मनाए जाने वाले होली उत्सव का रंग मारवाड़ में भी गहरा होता है। होली जलने के १५ दिन पहले से ही होली के गीत गाए जाते हैं। लोकगीतों के साथसाथ रात्रि को गींदड़ नृत्यों का विशेष आयोजन किया जाता है। लोकगीतों में पुरुष स्त्री के युगल स्वरों की मधुर लहरियों के साथ चंग का भी उपयोग किया जाता है। पूर्णिमा की रात को होली जलाई जाती है। होली जलाने के अगले दिन होली खेली जाती है। होली पर रंगीन वस्त्र पहने जाते हैं।

राजस्थान में होली पर्व पर एक रोचक प्रथा भी प्रचलन में है। जब वहाँ होली जला दी जाती है, उस के बाद बालक रात को गाँव में इकट्ठे होते हैं। फिर जिसजिस घर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में पिछली होली के बाद किसी बालक या बालिका का जन्म हुआ है, वहाँ एकएक डंडिया ले कर उस घर में जाते हैं। प्रथा के अनुसार द्वार के भीतरी भाग में माता अपनी गोद में अपने बालक या बालिका को ले कर बैठती है। उस घर में गए बालको के समूह में से कुछ बालक अपने साथ ले जाई गई डंडियों को दरवाजे के बीच, लेकिन बाहरी भाग में पकड़ कर खड़े हो जाते हैं। उसी समय आटे से बनी हुई वेदी पर अपनी अपनी डंडियों से एकसाथ आघात करते हैं। यह आघात वे बालक करते हैं, जो द्वार के बीच में डंडियाँ ले कर खड़े होते हैं। आघात करने के साथसाथ यह गाना भी गाया जाता है :

हरिहरि हरियो ले, ज्यूँज्यूँ लहरियां ले
एड़ियों रो ऐड़ा खेड़ा...

इस गीत को गाने के बाद बालकों को घर का मुखिया मिठाई आदि दे कर विदा करता है।

'एडियों रा ऐड़ा खेड़ा...' इस पंक्ति का ऐड़ा शब्द मगरे (अजमेर मेरवाड़ा) की एक अनूठी होली खेलने की परंपरा की ओर इंगित करता है। ऐड़ा प्रथा के अनुसार मगरे में होली के दिन, होली के २ दिन पहले, के १–२ दिन बाद तक सामूहिक शिकार पर जाने की परंपरा हैं। ग्रुप शिकार पर जाने वाले पुरुष खरगोश, हिरन आदि विभिन्न प्राणियों का शिकार करते हैं। इसी को ऐड़ा के नाम से जाना जाता है। इस शिकार के बाद गाँव वाले सुबह अपने चौहटे (जिसे गैर भी कहा जाता है।) पर एकत्रित होते हैं। वहाँ गैर नृत्य किया जाता है। लेकिन इस गैर नृत्य की अवधि अल्पकालिक होती है। फिर कुछ देर बाद शुरू होता है रंगगुलाल का मेला। राजस्थान प्रांत में एक जनजाति पाई जाती है, जिसे सहरिया कहा जाता है। ये बड़े मौज मस्ती के साथ होली का आनन्द लेते है। जब होली का दिन आता है तो ये उस दिन 'फूल डोल' उत्सव मनाते है। फूल डोल उस दिन का कार्यक्रम है, जिस रोज होलिकादहन होता है। यह दूसरे रोज भी जारी रहता है। फूल डोल में सहरिया आदिवासियों द्वारा बनाई गई झाँकियाँ, उनके द्वारा किया गया नृत्य, उनके द्वारा खेली गई होली देखने को मिलती है। फूल डोल इन जनजातियों का ऐसा उत्सव है, जो रंग जुलूस के समारोह में तब्दील होजाता है। इस समारोह में किशनगंज कस्बे के मध्य में अवस्थित चतुर्भुज ठाकुर जी को एक विमान में बैठाकर पूरे क्षेत्र में घुमाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि ठाकुर जी इन लोगों के साथ होली खेलते हैं।

फूस का एक विशाल हाथी तथा उसके पाँव में लकड़ी के चार पहिए बनाने का कार्यक्रम एक सप्ताह पहले से ही प्रारंभ हो जाता है। उत्सव के दिन इसी हाथी पर ठाकुरजी को बिठाया जाता है और नगर भ्रमण कराया जाता है। फूल डोल के मौके पर इस जुलूस में लोक–झाँकियाँ भी सजाई जाती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग–रागिनियाँ, रँग–गुलाल, आरती–स्वागत, दरवाज़े आतिथ्य सब कुछ ऐसा होता है जैसे पूरा माहौल सजीव हो उठा हो। इनके जुलूस और उत्सव को देखने के लिए दूर–दराज़ के गाँवों से लोग पहुँचते है। झाँकियों से लेकर नृत्य संगीत तक में स्वर, लय और अपरिमित आनन्द का समावेश होता है।

हरियाणा :

हरियाणा में होली का डांड्डा वसंत पंचमी के दिन को गाढ़ दिया जाता है। गांव वाले लकड़ी आदि काटकाट कर उस स्थान पर रखना शुरू कर देते हैं, जहां होलिका जलाने के लिए एक लकड़ी गढ़ी होती है। अब गाँव का हर व्यक्ति वसंत पंचमी के दिन से होलिका दहन तक वहाँ उपले, लकडियाँ डालता रहे तो स्वाभाविक है कि वहाँ पर एक बहुत बड़ा ढेर ईंधन का लग जाएगा। होली की तैयारियाँ हरियाणावासियों के लिए किसी उत्सव से कम महत्तव नहीं रखतीं। लड़कियाँ गोबर के 'ढाल बुड़कुलें' बना कर उन्हें सुखाती हैं। इन ढाल बुड़कुलों को रस्सी में पिरो कर माला जैसी बनाती हैं, जिन्हें 'जेल' कहा जाता है। लड़के कई तरह के रंगों से रंग कर 'खांड्डे' तथा 'तलवार' बनाते हैं। ये खांड्डे और तलवार करीलों तथा जालों को काट कर बनाए जाते हैं। महिलाएं इस दिन व्रत रखती हैं। होली पूजने के लिए वे कच्चा सूत और चावल होलिका के पास ले जाती हैं। होलिका के पास ईंधन के ढेर के चारों ओर कूकड़ी का सूत पूरा जाता है। कन्याएँ 'सेज' भेंट करती हैं।

होली पूजन के बाद रात को होली जलाई जाती हैं होलिका दहन के साथसाथ फागुन के गीत जब गाए जाते हैं तो वातावरण की उन्नमन्तता अपनी चरम सीमा पर होती है।

"कोरीकोरी चाँदी की काँगणी घड़ाई ऊपर जड़ाया।
नगीना हो मनैं तेरी सौं फागण का मस्त महीना।
हो मनैं तेरी सौं।"

हरियाणा के विभिन्न क्षेत्रों में होली की रंगीनियत का सैलाब लोकनृत्यों और लोकगीतों में उमड़ आता है। होलिका दहन के पश्चात अगले दिन रंग चढ़ता है धुलैंडी का। धुलैंडी वाले दिन युवकों के समूह हाथ में रँगदार पानी की बाल्टियाँ और विभिन्न रँगों को छिपा कर होली खेलने के लिए मैदान में डटे रहते हैं। महिलाएँ और वे भी हरियाणा की, कौन सी कम हैं। वे भी रँगती हैं लेकिन 'डंडा' और कोड़ों' से।

बुंदेलखण्ड :

बुंदेलखण्ड में होली खेलने का ढंग बिलकुल निराला है। यहाँ होली दौज को खेली जाती है। महारानी लक्ष्मीबाई के पति की मृत्यु के कारण होली चैत्र मास कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को न मना कर, दौज को खेली जाती है। इस दिन बहिनें अपने भाइयों का टीका करती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुंदेलखंड में होली मनाने की रीति बड़ी रोचक है। माली प्रत्येक घर में अरंडी के पेड़ की डाली व गेंहूँ की ५ बाल व फूल दे कर जाता है। प्रतिपदा को होलीदहन के बाद एक पेड़ के चारों ओर उपले गाड़े जाते हैं। एक सफेद कपडे में चावल बाँध कर पेड़ की डंडी से बाँधे जाते हैं। उसी दिन आटे की मोटी और छोटी रोटी बनाई जाती है। इसे मकइया कहते हैं। मकइयों का चूरमा बनाया जाता है। फिर उस में गुड़शक्कर और घी मिलाया जाता है। उसी से राख के पास दीपक रख कर पूजा करते हैं व सात बार परिक्रमा की जाती हैं। पेड़ के चारों ओर जो उपले गाड़े जाते हैं, उन में से पांच या सात उठा कर रख लिए जाते हैं, जो अगली होली को जलाए जाते हैं।

त्योहार पर किसी एक व्यक्ति या जाति का अधिकार नहीं होता और जब बात रागरंग त्योहार होली की हो, तब तो उल्लास शहर या गाँव तक सीमित रह भी नहीं सकता। भील जाति के लिए भी होली पर्व का विशेष महत्त्व है। एक महीना पहले से होली का त्योहार मनाने की तैयारियां शुरू हो जाती हैं। होलिका दहन से एक महीना पहले 'थमं' गाड़ दिया जाता है। थंभ के पास रात्रि को पुरूष व स्त्रियाँ नाचते गाते हैं। नृत्य में इन के पैरों की थिरकन देखते ही बनती है। होलिका दहन आधी रात के पश्चात किया जाता है। होलिका दहन के दूसरे दिन, दिन होता है रँगो का।

होली के रँगो पर हर प्रदेश के रँग चढ़े हैं। हर प्रदेश इसे मनाने के तौर तरीके भिन्न हैं। लेकिन रागरँग के इस त्योहार को मनाने के लिए माधुर्य, उत्साह जैसी भावनाएँ खास अहमियत रखती हैं। देश के हर वासी का यह कर्तव्य है कि वह मर्यादाओं, भावनाओं एवं तौरतरीकों को महत्त्व दे। त्योहार व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ता है।

अगर आप होली के रँगों–सा रँगीला व खूबसूरत ऐसा नज़ारा देखना चाहते हैं, जिसमें जनसमूह का उमड़ता सागर और उसके परिधानों से झाँकते रँगों का चटकीलापन शामिल हो तो इसके लिए आनंदपुर साहब के गुरुद्वारा केशगढ़ साहब में प्रत्येक वर्ष मनाए जाने वाले 'होला–मोहल्ला' उत्सव से सर्वप्रथम परिचित होना पड़ेगा।

श्री गुरुद्वारा केशगढ़ सिक्खों के चार तख्तों में से एक है। यहीं पर 'होला–मोहल्ला' उत्सव के रूप में होली के उत्सव के समापन को शानदार रूप दिया जाता है। दूर–दराज के गाँवों से हजारों की संख्या में भक्तगण इस उत्सव में शामिल होने के लिए आते हैं और उस दिन के महत्व का पुनः स्मरण करते हैं जब सिक्खों के अंतिम व दसवें गुरु गोविंद सिंह जी ने इस पर्व को सामाजिक सुधार के कार्यों से जोड़ा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होला–मोहल्ला उत्सव के अस्तित्व में आने के पीछे एक ज्ञानवर्द्धक पहलू यह है कि गुरु गोविंद सिंह जी ने एक सुधारक होने के नाते उस समय देखा कि होली का त्योहार, जो कि आपसी मेल–मिलाप और भाई–चारे का त्योहार है, गुंडागर्दी तथा दुश्मनी निकालने का बहाना बन चुका है। इसलिए उनकी दूरदृष्टि और दार्शनिक नज़र ने रँगो के इस त्योहार की पूरी प्रकृति को बदलने का विचार कर लिया। इसी विचार से उन्होंने अपने अनुयायियों से उस परमात्मा की अर्चना करने को कहा तथा उन महान लोगों की कुर्बानियों को याद करने को कहा, जिन्होंने इस संसार को खूबसूरत बनाने मे योगदान दिया। इसी कारण उन्हें सबसे मैत्री तथा समानता की भावना से प्रेरित होकर एक–दूसरे के ऊपर रँगो के बजाए केवल गुलाब जल छिड़कने का आह्वान किया।

जनसाधारण ने उनकी इस बात को समझा और इस तरह इस त्योहार के चलन में एक नाटकीय बदलाव आ गया। अब वह जनसमूह, जो कभी केवल हल्ला–गुल्ला करता था, श्रद्धालुओं में बदल गया और होली का त्योहार सद्भावना के त्योहार के रूप में तथा होला–मोहल्ला हर्षोल्लास और आत्मिक जागरण के त्योहार के रूप में मनाया जाने लगा। तभी से लेकर आज तक यह त्योहार गुरु जी की इच्छाओं की पूर्ति के रूप में नज़र आता है। इस दिन सभी हिंदू व सिख मिलजुल कर सामूहिक प्रार्थना करते है। उनके लिए यह उत्सव एक त्योहार से कहीं ज्यादा महत्व रखता है।

इस उत्सव पर श्री गुरुद्वारा केशगढ़ में बहुत बड़ा मेला लगता है। श्रीगुरुद्वारा केशगढ़ साहिब को खूब सजाया जाता है, क्योंकि गुरुद्वारे मे ही मुख्य उत्सव होते है। तीन दिनों तक चलने वाले सभी धर्म, जाति, वर्ग के लोगों के मिले–जुले इस उत्सव के दौरान लंगर चलता रहता है और गुलाल के साथ होली खेली जाती है। तीसरे दिन बहुत बड़ा जुलूस निकलता है और सभी मुख्य बाजारों तथा गलियों में से गुजरता है। इस उत्सव में सांस्कृतिक कार्यक्रम सोने पर सुहागे का काम करते है। इसमें शहीदों की याद में वीर रस के गीत गाए जाते हैं तथा निहंग लोग तलवार आदि के करतब दिखा कर दर्शकों को आश्चर्यचकित कर देते है। संध्या होते ही आकाश में अस्त होते हुए सूर्य की किरणों की लालिमा के साथ आनंदपुर साहिब में इस शुभ त्योहार का समापन होने लगता है। श्रद्धालुओं की भीड़ अपने–अपने पड़ाव पर लौटने लगती है तथा एक बार फिर 'जो बोले सो निहाल,सत श्री अकाल' का नारा वातावरण में गूँज उठता है। ☐

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसे मनाते हैं आदिवासी : अपनी होली

–पुष्पा पाल

होली पर्व पूरे देश में हर्ष और उमंग के साथ मनाया जाता है। समाज के सभी वर्ग, आबाल वृद्ध नर नारी इसे हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं। आदिवासी समाजों में भी यह पर्व अपनी एक विशिष्ट पहचान रखता है। ये लोग अपनी–अपनी रीति रिवाज लोकनृत्यों और लोकगीतों के माध्यम से होली में इन्द्रधनुषी छटा बिखेर देते है। मस्ती भरा असर सारे वातावरण में छा जाता है। हर आदिवासी अचंल अपने–अपने ढंग से इस पर्व को मनाता है।

बस्तर, छत्तीसगढ़ का विशाल आदिवासी क्षेत्र है, यहां होली साल में दो बार मनाई जाती है। एक बार फाल्गुन माह में और दूसरी बार चैत्र माह में। बस्तर में यह पर्व दंतेश्वरी देवी के पवित्र धाम 'दंतेवाड़ा' में 'तियार' (त्यौहार) रूप में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। दंतेवाडा में फाल्गुन शुक्ला षष्ठमी से लेकर चतुर्दशी तक 'दंतेश्वरी फागुन मढई' नाम से मेला लगता है। इसी में होली 'तियार' पूर्ण धार्मिक आस्था के साथ मनाते हैं ये आदिवासी लोग। होली से पूर्व बस्तरवासी 'नाच मांडनी' के अंतर्गत 'लमहामार' 'काडरीमार' 'चीतल मार' और मार जैसे आखेट लोक नृत्यों के माध्यम से मंनोरंजन करते हैं। त्रयोदशी को देवखेलानी की जाती है। जिसमें गाँव गाँव से लोक-देवता समारोहपूर्वक यहां लाए जाते हैं फिर दंतेश्वरी देवी की डोली उठती है। शाम को यहाँ होली से पूर्व "गाली उत्सव" मनाया जाता है। चतुर्दशी को "आँवरा मार" कार्यक्रम होता है। इसमे आदिवासी दो दलों में बँटकर एक दूसरे पर आँवलों से वार करते है। बड़ा मनोरंजक होता है यह आँवरामार युद्ध। उसी रात होलिका दहन होता है। इसके बाद लोग रँग गुलाल धूलकीचड़ से होली मनाते है। इसमें आदिवासी और गैर आदिवासी का भेदभाव मिट जाता है सभी रँग से सराबोर दिखते हैं।

उत्तर प्रदेश की भोटिया जनजाति "आटे" से होली खेलती हैं। यह जनजाति शिवरात्रि के दो दिन बाद अपना मुख्य पर्व 'लोसर" मनाती है। इस दिन भोटिया अपने घरों के ऊपर लगे पुराने रंगबिरंगे झंडे उतार कर नए झंडे लगाते हैं। फिर ये लोग थालियों में आटा लेकर होली खेलने निकल पडते है। रास्ते में मिलने वाले हर आदमी के चेहरे पर वे आटे को गुलाल की तरह मल देते है।

मध्यप्रदेश के "भील" आदिवासी "भगौरिया" नाम से होली मनाते है। भगौरिया वास्तव में भील युवक द्वारा अपनी प्रेमिका को चुनकर उसे भगा ले जाने कँवारेवारे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्योहार है। यह होली के एक सप्ताह पूर्व शुरू होता है और होली के दिन तक चलता हैं। जिस दिन गाँव के आस-पास हाट या बाजार लगता है। भील युवक नाचते-गाते यहाँ पहुँचते है। "माँदल" की थाप पर नृत्य करते-करते जब भील युवक किसी युवती या प्रेमिका के मुँह पर गुलाल मल देता है और जवाब मे वह युवती भी युवक के गाल पर गुलाल लगा देती है तो यह मान लिया जाता है कि ये युवक-युवती विवाह सूत्र में बँधने को तैयार हैं। युवक अपनी प्रेमिका को लेकर भाग जाता है और दोनो किसी परिचित के घर में जाकर छिप जाते हैं इसी के लिए इसे 'भगौरिया' कहते हैं। इस 'भगौरिया' कार्य की सूचना जब युवक-युवती के घर वालों को मिलती हैं तो दोनों पक्ष मिलकर विवाह सम्पन्न करते हैं। यदि युवती प्रतिउत्तर में युवक के मुख पर गुलाल नहीं मलती तो निराश युवक किसी अन्य युवती की तलाश करता है।

गुजरात की भील जनजाति "गोलगधेड़ो" लोकनृत्य के माध्यम से होली मनाते है यह भी विवाह समारोह जैसा एक पर्व होता है। होली के अवसर पर गाँव में एक स्थान पर एक बांस या पेड़ पर गुड़ और नारियल बाँध दिया जाता है। इसके चारों ओर भील युवतियाँ घेरा बनाकर नृत्य करती है। भील युवक, युवतियों के घेरे को तोड़कर पेड़ पर चढ़ने का प्रयास करता है तो युवतियाँ नृत्य करते हुए ही युवक का प्रतिहार करती है उसे मारती हैं, उसके कपड़े फाड़ देती है, नौंचती हैं, बाल खींचती है। फिर भी कोई साहसी युवक घेरा तोड़कर पेड़ पर चढ़कर गुड़ और नारियल तोड़ लाता है तो वह नृत्य कर रही युवतियों पर होली का गुलाल उड़ाता है जिस पर पहले गुलाल पड़ता है वह युवती इस युवक से विवाह करने को बाध्य होती है।

राजस्थान के बाडमेर में आज से ५० वर्ष पूर्व रँगों के स्थान पर पत्थरों से होली खेली जाती थी। होलिका दहन के दूसरे दिन लोग छतों की मुंडेरों, पेड़ों या ऊँचे स्थानों पर चढ़कर पत्थर बरसाते थे। इस पत्थर वर्षा से बचाव के लिए लोग लोहे की ढाल साथ लेकर चलते थे।

राजस्थान के ही मारवाड़ क्षेत्र में होली के लोक देवता 'इलोजी' के साथ होली खेलने की अनूठी परम्परा है। 'इलोजी' इस क्षेत्र के क्षेत्रपाल (भैरव या भैरो) के रूप में पूजे जाते है। हर गाँव में इनकी प्रतिमा मिलती है। किंवदंती के अनुसार इलोजी का विवाह हिरण्यकश्यप की बहिन 'होलिका' से होने वाला था। किन्तु होलिका तो अपने भाई के बहकावे में आकर ईश्वर भक्त प्रहलाद को भस्म करने के लिए स्वंय ही भस्म हो गई। तो इलोजी कुँवारे रह गए। आज भी राजस्थान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युवक को 'इलोजी' कहकर चिढ़ाया जाता है। होली जलाने पूर्व 'इलोजी' का श्रृंगार किया जाता है। उसे दूल्हे का रूप दिया जाता है। बैंड–बाजे बजाए जाते हैं। नृत्य किया जाता है। 'इलोजी' को लक्ष्य करके लोक गीत गाए जाते है। नाना प्रकार मज़ाक किए जाते हैं। यह हास्य त्योहार यहाँ इलोजी की देन माना जाता है।

बिहार मे हेाली को "फगुआ" कहा जाता है। इस दिन यहां के आदिवासी चौराहों पर सेमर का पेड़ या उसकी डाल लाकर गाड़ देते है। इसके नीचे ये लोग अपने इष्ट देवता की पूजा करते हैं इसके बाद इस पेड़ या शाखा पर घास पत्ता आदि डालकर आग लगा देते हैं। इस फगुआ के चारों ओर आदिवासी चक्कर लगाते हुऐ नारे लगाते हैं फगुआ के दूसरे दिन नए साल के लिये हल चलाया जाता है। फगुआ के दिन जन्में बालक को फगुआ और बालिका को 'फगुनी कहा जाता है।

इस प्रकार यह होली पर्व पूरे देश में उमंग, उत्साह और उन्मुकत्ता के साथ मनाया जाता है। लोक जीवन, इस पर्व के माध्यम से नई ऊर्जा प्राप्त करता है और अपने व्यक्तिगत दुःख अवसाद और मानसिक ग्रन्थियों को हर्षोल्लास के परिवेश में भुला देता है। यह पर्व लोक मानस का परिष्कार कर जिजीविषा शक्ति को विकसित करता है। ❐

आर जैड ६८४/४ डी
इन्द्रापार्क, नई दिल्ली–११००४५

रसिया को नारि बनाबौ री,– रसिया को
कटि लहँगा, गल माहिं कंचुकी, चुनरी सीस उढ़ाबौरी, रसिया को
गाल गुलाल, दृगन में अंजन, बैंदी भाल लगाबौरी, रसिया को
नारायण तारी बजा–बजा के, जसुमति निकट नचाबौरी, रसिया को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होली पर गाये जाने वाले अनराए गीत

–आर. एस. सुमन

होली रंगों का, उमंगों का और हुड़दंगों का त्योहार तो है ही एकरसता, एकरूपता और भावात्मक एकता का भी प्रतीक है। यदि आप होली से परिचित हैं तो फाग (फागु) के विषय में भी अवश्य जानते होंगे। लेकिन संभवतः 'अनराये' के विषय में आप न जानते हो। 'अनराये' भी फाग की तरह होली पर गाये जाने वाले लोकगीत ही होते हैं। 'अनराये' गाने के बाद ही फाग गाई जाती है।

'अनराये' शब्द संभवतः 'अनरहे' पद्य से बना है। अनरहें अर्थात् जो इस धरती पर नहीं रहे उनकी स्मृति में गाये जाने वाले मृत्यु गीत। मुहूर्त के अनुसार जैसे ही होलिका दहन आरंभ होता है तभी गाँव के बड़े बूढ़ों की एक टोली तैयार होती है जो 'अनराये' गाती है। होली की यह साँझ अथवा रात अत्यधिक गंभीर और हृदय विदारक हृदय उपस्थित कर देती हैं। सबकी आँखें नम हो जाती हैं। उल्लसित वातावरण दुःख के सागर में डूब जाता है। जी हाँ, यह सब होली के त्यौहार पर ही होता है। नगरों में रहने वाले संभवतः इससे परिचित न हों, लेकिन ग्रामीण क्षेत्र में यह परम्परा आज भी दृष्टिगोचर होती है।

'अनराये' गाते समय ढोलक, मंजीरा, ताशे, चीमटा आदि वाद्ययंत्रों का भी प्रयोग किया जाता है। लेकिन 'अनराये' प्रत्येक द्वार पर नहीं गाए जाते। होली से पूर्व पूरे साल में जिस परिवार में किसी स्त्री अथवा पुरूष की मृत्यु हुई हो है उसी के घर के द्वार पर 'अनराये' गाए जाते हैं। यदि किसी बच्चे की मृत्यु हो गई हो तो 'अनराये' नहीं गाए जाते।

अनराये गाने वालों में किशोर या युवक सम्मिलित नहीं किये जाते। अनराये गाने वालों पर रंग–अबीर नहीं डाला जा सकता, गुलाल नहीं लगाया जा सकता। अनराये गाने वालों के चेहरों पर उदासी होती है खुशी नहीं अनराये गाने वाले बीड़ी, तम्बाकू आदि का भी सेवन नहीं करते हैं।

'अनराये' गाने वाले द्वार पर पहुँचते है और 'अनराये' गाने के लिए जैसे ही ढोलक पर थाप लगाते हैं उसी समय उस घर की स्त्रियाँ रोना आरंभ कर देती हैं। 'अनराये' में दर्शन होता है, सत्य होता है और मन को धैर्य बँधाने वाला उपदेश होता है –

मैंने ढूँढे तीनों लोक रे
परि भइया बिछुरो ना मिलै
कै मेरो भइया बन गओ
कै पहुँचो ससुरारि रे,
परि भइया बिछरो ना मिलै।।
धत्ती है अम्बरबेलि
जापै कौन–कौन जोधा भये,
हरीचन्द राजा भये, भई हरीचंद राजा भये
और भरो नीच घर नीर, जापै कौन–कौन जोधा भये।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कितनी विचित्र लगती है यह परम्परा कि घर के भीतर कोहराम मचा हो और द्वार पर गीत गाये जा रहे हों, ढोल–मँजीरा बज रहे हों। ऐसी मिसाल भारत के अतिरिक्त संभवतः विश्व के किसी बिरले देश में देखने को मिले।

एक द्वार पर एक ही 'अनराया' (गीत) गाया जाता है। उस घर के एक–दो पुरुष 'अनराये' गाने वालों के बीच आ जाते हैं। अनराये गाते समय वे या तो खामोश खड़े रहते हैं या हिलकी भर भर रोने भी लगते हैं। जब गीत समाप्त हो जाता है तब अनराये गाने वाले उन पुरुषों को चुप कराते हैं, उनको धीरज बँधाते हैं। अपनी बोली में जीवन और मृत्यु के दर्शन की बातचीत करते हैं। संसार की असारता के बारे में उपदेश देते है। फिर किसी अन्य द्वार की ओर उन्हें साथ लेकर 'अनराये' गाने के लिए चल पड़ते हैं। इस बीच घर में रोती स्त्रियों को चुप कराने तथा उनको धैर्य बंधाने के लिए पास–पडोसी की स्त्रियाँ भी पहुँच जाती हैं।

अगले दिन सुबह कीचड़–मिट्टी से होली खेली जाती है। दोपहर को स्नान आदि के बाद ग्रामीण देवी–देवता के मंदिर या देवालय में एकत्र हो कर पूजा पाठ करते हैं। वाद्ययंत्रो पर गंगाजल छिड़कते हैं। कम से कम पाँच फगुही भजन देवी–देवताओं के लिए गाये जाते हैं। वहीं फाग गाने वाली एक टोली बन जाती है जो द्वार–द्वार पर दो हिस्सों में बंट कर फाग गाना आरंभ कर देती है। तब द्वारों पर रंग–अबीर की बरसात आरंभ हो जाती है। लोग एक–दूसरे के गुलाल लगाते हैं। मिठाइयाँ बँटती हैं।

पान–सुपारी खाई और खिलाई जाती है। सारा वातावरण रंगीन और रसीला हो जाता है। स्त्रियों के टोल भी रंगों में सराबोर धमाचौकड़ी मचाते निकल पड़ते हैं। तब ऐसे वातावरण में वे स्त्री–पुरुष भी डूब जाते हैं जिनके द्वार पर अनराये गाए गए थे। ❑

(साभार : आकाशवाणी, दिल्ली)

पिचकारी के लगत ही, मो मन उठी तरंग।
जैसे मिश्री केंद की, मानो पी लई भंग।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललित कला में होली

–ज्योतिष जोशी

होली भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रसिद्ध पर्व है। इसकी पहचान वैसे तो एक उत्सव के रूप में ही है, पर इसकी व्यापकता ने इसे सांस्कृतिक छवि दे दी है। इसी छवि के कारण होली प्रत्येक धर्मावलंबी, संप्रदाय और मत–मतांतरों को मनाने वाले लोगों के बीच लोकप्रिय है। इस पर्व में लघुता–प्रभुता की दीवारें पट जाती हैं और सभी मिलजुलकर एक हो जाते है। वर्ष भर पुरानी शत्रुताएँ, वैमनस्य और गलतफ़हमियाँ भी इस दिन दूर होती हैं और लोगों में नए संवत्सर के साथ जीने की नई उमंग, नई उत्कटता उपजती है।

बुराई पर अच्छाई की विजय का प्रतीक होली पर्व सारी कलाओं का प्रिय पर्व रहा है। साहित्य, संगीत, नृत्य, वाद्य, नाटक के साथ–साथ होली की छवियाँ सभी ललित कलाओं में दिखाई देती हैं। हालाँकि साहित्य जैसा संवेद्य राग उसमें नहीं हैं और न ही प्रदर्शनकारी कलाओं जैसी चारुताः फिर भी रूपंकर कला के रूप में ललित कला में होली के विभिन्न भावों का चित्रण मन में सहज उलास की भावना जगाता है।

इस पर्व को प्रत्येक युग के कलाकारों ने अपने काम में लिया और उसमें अपनी–अपनी शैली में नए–नए भाव भरे! मुगलकालीन कृतियों को ही देखें तो मालूम होगा कि कलाकारों ने रँग और गुलाल को व्यक्ति–जीवन के उल्लास के रूप में देखा है। इन चित्रों में होली के रँग ने बादशाह और आवाम के फ़र्क को मिटा दिया है। बेगमों के साथ होली खेलते बादशाहों ने कृष्ण की मुग्ध करने वाली मुद्रा अख्तियार की हैं और सरस चेष्टाओं से भारतीय सामासिक संस्कृति को प्रदर्शित किया है।

गुप्तकालीन कलाओं में होली का अंकन पाषाण प्रतिमाओं को जीवन्त करता है। जहाँ रँग, गुलाल के साथ हर्षित नर–नारी एक–दूसरे के निकट आते जाते हैं। इसी तरह मौर्यकाल, अशोक काल और हर्षवर्द्धन कालीन कला कृतियाँ विभिन्न पर्वों के साथ–साथ होली की बहुविध छटाएँ प्रस्तुत करती हैं। इनको देखकर अनायास ही मन मुग्ध हो जाता है। इनमें होली एक सात्विक पर्व की तरह आती है जिसमें प्रेम, सौहार्द्र तथा माधुर्य की धारा प्रवाहित होती है।

आधुनिक भारतीय कला में होली के विविध रंगों के दर्शन होते है। इनमें ब्रज, गुजरात, बंगाल, राजस्थान तथा अवध की होली के नाना रूपों को अनेक प्रकार की शैलियों में दिखाया गया है। मिनिएचर की शैली का प्रभाव भारतीय पर्वों तथा उत्सवों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में अक्सर दिखाई देता है जिसे पेंटिंग में खासतौर पर चित्रित किया जाता है। इसके अलावा ड्रॉइंग, कोलाज, स्केच आदि कलारूपों में भी होली के विविध दृश्य प्रदर्शित किए जाते रहे हैं। मूर्तिशिल्प, काष्ठ शिल्प, म्युरल आदि शैलियों में होली के रंग अपनी अलग छटा में बिखरते दिखाई देते हैं। म्युरल के विस्तार में तो उत्सवों की पूरी कथा ही आ जाती है। मधुवनी पेंटिंग में पुराकथाओं को अंकित करने की एक पुरानी परंपरा रही है। जिसमें पर्वों, त्योहारों, रिवाजों आदि को विषय बनाकर कलाकार उसकी छवियों को साक्षात् प्रस्तुत करते हैं। इसी तरह पहाड़ी कला की अनेक शैलियों में होली के विविध प्रकारों का मोहक चित्रण दिखाई देता है। पहाड़ों से उड़ते गुलाल नीचे समतल पर खड़े नर–नारी समूहों पर ऐसे गिरते हैं मोनों वे हवा में फुहारों से धुल गए हों और जिनमें भींगकर लोग भाव विभोर हो रहे हों।

राजा रवि वर्मा ने विभिन्न शैलियों में भारतीय पर्व को चित्रि किया है जिसमें होली की भी आकृतियाँ मंत्रमुग्ध करती हैं। इसी परंपरा में अवनीन्द्रनाथ टैगोर, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, नंदलाल बोस आदि महान कलाकारों ने होली के अनेक मूर्त्त तथा प्रतीकात्मक चित्र बनाए हैं। गगनेन्द्रनाथ टैगोर और जामिनी राय ने भी पारंपरिक पर्वों को अत्यंत मनोहारी रूप में प्रस्तुत किया हैं।

इस अभियान में उत्तर–दक्षिण की दीवारें पट गईं। पूरे देश के कलाकारों ने संस्कृति के इस भव्यतम पर्व पर अपनी कूची का प्रयोग किया और व्यापक सद्भावना का परिचय दिया। मकबूल फिहा हुसैन ने तो हिन्दू देवी–देवताओं सहित हिन्दू पुराकथाओं की कई श्रृँखलाएँ भी बनाई हैं जिसमें पूरब और पश्चिम की कई पद्धितियाँ समन्वित हुईं। होली भी इस श्रृँखला का एक अहम हिस्सा है। सातवें दशक के आरंभ में होली की श्रंखला के कई चित्र नए आस्वाद में सराबोर करते हैं। १९६१ में इसी श्रृंखला का एक चित्र नए भाव को जगाता हैं। इस चित्र में रँग भरी पिचकारी के साथ एक नायिका इस तरह चित्रित है मानों उसके हाथ में जबरन पिचकारी दे दी गई हो और दूर खड़ा नायक उसे ललकभरी निगाहों से देख रहा है। होली की सहज आत्मीयता भरी उमंग का द्वेष और मनमुटाव में बदलते जाना इस चित्र में दिखाई देता है।

इसी तरह जगदीश स्वामीनाथन के चित्रों में भारतीय संस्कृति के साथ–साथ जिस दर्शन की अभिव्यक्ति होती है उसमें वसंत, शीत, वर्षा, शिशिर, हेमंत आदि ऋतुओं की नाना छटाएँ दृष्टिगोचर होती है।

के०के० हेब्बार के चित्रों में भारतीय ग्रामीण जीवन का कोना–कोना प्रकाशित होता है। तो लक्ष्मण पै के यहाँ वसंत के मादक उमंग का एक–एक क्षण, सैयद हैदर रजा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने ब्रम्हांडीय चित्र फलक पर होली के रंग भरते हैं तो एम० रेडप्प नायडू का अपना रँग–संसार होली के रंग–बिरंगे फब्बारे मे ही उतार देते हैं।

भारतीय कला जगत में प्रायः सभी बड़े कलाकारों ने होली के नाना रूपों के साथ–साथ भारतीय संस्कृति के रंग–बिरंगे पर्वों–त्योहारों पर मनोहरी चित्र बनाए हैं जिसमें विचारधारा, संप्रदाय,धर्म आदि के भेद ही कोई जगह नहीं है। इन कलाकारों में विमल दासगुप्ता, शरतचंद्र देव, एल० मुनुस्वामी, विनायक पांडुरंग करमकर, पी०टी० रेड्डी, शैलोज मुखर्जी, वीरेन डे, के० माधव मेनन, बद्रीनाथ आर्य, वी. एस. गायतोण्डे, अकबर पदमसी, सतीश गुजराल, असित हालदार, वेंकटप्पा धनराज भगत, चित्र प्रसाद, रामकुमार आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

होली के पर्व में रँगी रूपंकर कला का संसार इस अर्थ में बड़ा विराट् है कि वहाँ मौन में घोष का, हर्ष में उत्कर्ष का तथा अवसाद में सद्भाव का समन्वित रूप दिखाई देता है। रंगों–रेखाओं के संयोजन से निर्मित होली के विभिन्न रूप भारतीय सांस्कृतिक जीवन को उसकी पूरी गरिमा के साथ तो दिखाते ही हैं मनुष्य–जीवन में सद्भाव तथा उत्साह के भाव की जरूरत भी जताते हैं। आधुनिक भारतीय कला के विभिन्न प्रदेशों, घरानों और पद्धतियों के कलाकार इस अर्थ में समन्वित एकता का परिचय देते हैं। ❐

– ललितकला अकादमी, नई दिल्ली

ब्रज मंडल के विकास की उपेक्षा क्यों ?

आइये मिलकर इस पावन परम कृष्ण की जन्म भूमि
और लीला स्थली के विकास के लिए होली के
इस शुभ अवसर पर संकल्प लें।

महेश चन्द्र उग्रवाल
सी.एम.डी. ब्रजवासी हाई–टैक उद्योग लि०
होटल मधुबन, मथुरा, दूरभाष : 26522074

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विदेशों में भी मनाई जाती है होली

–हिमांशु गोयल

रँगों और उल्लास का पर्व होली न केवल भारत तथा विदेशों मे बसने वाले भारतीयों द्वारा हंगामापूर्ण तरीके से मनाया जाता है बल्कि विश्व के कई अन्य देशों में भी उन के परम्परागत पर्व के अनुसार या अन्य रूपों में होली मनाई जाती है।

चीन

चीन के एक सीमावर्ती प्रांत में वहाँ की ताए जाति के लोग एकदूसरे पर पानी फेंक कर पायावामा नामक त्योहार मनाते हैं। इस त्योहार के मनाने के पीछे वहाँ एक दंतकथा प्रचलित है–वर्षों पहले वहाँ छुड़बिंग नामक एक राक्षस ने भयंकर उत्पात मचा रखा था। वह जिस किसी सुंदरी को देखता उसे उठा कर ले जाता। इस प्रकार जब उस के पास सैकड़ो सुंदरियाँ कैद हो गई तो उस ने उन में से १२ अत्यंत रुपवती कन्याओं को अपने महल मे रख लिया। सुंदरियाँ राक्षस से छुटकारा पाना चाहतीं थी, पर उस की जादुई शक्तियों के आगे उन की एक न चलती थी। उन में से जो सब से छोटी सुंदरी थी, वह रुपवती होने के साथसाथ बुद्धिमती भी थी। उस ने राक्षस से मेलजोल बढ़ा कर उस की शक्ति का रहस्य जान लिया। फिर एक दिन उसे मार गिराया।

चीन में होली जैसा ही एक पर्व मनाया जाता है "च्वेजे"। यह पर्व बसंत के बाद प्रारंभ होता है, इस पर्व में वहाँ के निवासी अग्नि जला कर उस की पूजा करते हैं। इस के बाद लोग रंगबिरंगे नए वस्त्र पहन कर एक दूसरे को बधाई देते हैं। इस अवसर पर विभिन्न रोमांचकारी खेलों का आयोजन भी किया जाता है।

अमेरीका

अमेरिका में "हैलाइन" नामक पर्व होली से मिलता जुलता है। ३१ अक्तूबर की रात को युवक युवतियाँ नाचतेगाते एक दूसरे को सहर्ष बधाई देते हैं।

जर्मनी

जर्मनी में ईस्टर के समय होली की तरह का ही एक त्योहार मनाया जाता है। इसे वहां कार्निवाल के नाम से जानते हैं। ईस्टर के शनिवार की शाम को जर्मनवासी घास का पुतला बना कर उसे जलाते हैं। पुतला दहन के बाद सांस्कृतिक कार्यक्रम होता है और लोग एक दूसरे पर रँग डालते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इटली

इटली में होली जैसा पर्व है, "रेडिका" यह पर्व वहाँ लगभग १ सप्ताह तक मनाया जाता है। इस पर्व पर लोग जोर जोर से नाचतेगाते हुए चौराहों पर इक्ट्ठे होते हैं। लोगों के इकट्ठे होने पर वहाँ रखी लकड़ियों के ढेर में आग लगा दी जाती है। कहा जाता है कि इटलीवासी इस त्योहार को देवी "फ्लोरा" को प्रसन्न करने के लिए मनाते हैं।

पोलैंड

पोलैंड में 'अर्सिना' नामक पर्व में लोग एक दूसरे पर रँग डाल कर अपनी खुशियाँ ज़ाहिर करते हैं।

इंगलैंड

इंगलैंड में होली से मिलता जुलता एक पर्व बहुत ही धूमधाम से मनाया जाता है। इसे वहाँ 'माई फाक्स डे' के नाम से जाना जाता है।

यूनान

यूनान में 'मेयोल' नामक पर्व होली से बहुत मिलता जुलता है। इस पर्व में यूनानी चौराहों पर खंभा गाड़ कर लकड़ियाँ एकत्र कर उन में आग लगाते हैं। ऐसा कर वे अपने देवता 'डायनोसिज़' की पूजा करते हैं। इस क्रम में वे रँगों का भी खूब प्रयोग करते हैं।

आस्ट्रेलिया

आस्ट्रेलिया में २१ मार्च को 'वैली' नामक पर्व में लोग एक दूसरे पर रँगों का इस्तेमाल करते हैं तथा विभिन्न मनोरंजक कार्यक्रम भी प्रस्तुत करते हैं।

जापान

जापान में १६ अगस्त की रात को एक पर्व मनाया जाता है, 'दे मोंजी ओकुरिबी'। इस रात जापान में कई जगहों पर तेज़ आग जला कर होली मनाई जाती है।

स्विट्जरलैंड

स्विट्जरलैंड में होली जैसा एक त्योहार ३ दिन तक मनाया जाता है। इस रोज लोग अलग अलग जगहों से झुंड में बांसुरी बजाते हुए सड़कों पर निकलते हैं। वे विभिन्न प्रकार के मुखौटे और टोपियाँ पहने रहते हैं। घूमते घूमते वे उक्त निश्चित स्थान पर पहुँचते हैं, जहाँ विभिन्न मनोरंजक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। दूसरे दिन वे सभी आपस में मिल कर 'सामूहिक भोज' का आनन्द लेते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होली : बुंदेलों का लोकोत्सव

नर्मदा प्रसाद गुप्त

बुंदेलखंड में प्राचीन काल से आदिम जातियों के उत्सव प्रचलित रहे हैं। उस समय उत्सव किसी भी जाति की जातीयता की पहचान थे, इसीलिए आर्य उन्हें अन्यव्रताः (अन्य व्रतवाले) कहा करते थे। 'बाल–नक्खत्त' और 'गढ़' उन्हीं के लोकोत्सव थे। 'बाल–नक्खत्त' मूर्ख–सम्मेलन जैसा उत्सव था। गाँव के कुछ लोग एक समूह में गोबर लपेटे, कीचड़ सने और मुखरँगे वेश में गालियाँ बकते हुए घूमते थे और द्वार–द्वार जाकर इच्छित वस्तु वसूलते थे। 'गढ़' उत्सव में एक चिकना और तेल पिलाया लम्बा–मोटा खम्भ मैदान के बीचों–बीच गाढ़ दिया जाता। उसके सिरे पर गुड़ की पोटली लटकायी जाती है, जिसे तोड़ने को युवक खम्भे में चढ़ने का प्रयत्न करते हैं। उस समय खम्भे के चारों ओर सोंटियाँ और लाठियाँ लिए खड़ी युवतियाँ उसे रोकती हैं। उनसे बचकर जो पोटली छुड़ाकर ले आता है, वही विजयी माना जाता है।

नाग–वाकाटक काल में 'मदनोत्सव' शुरू हुआ। कामसूत्र में उसे 'सुवसंतक' कहा गया है। मूल रूप में यह ऋतूत्सव था जो वसंत ऋतु के आगमन पर होता था। उसमें 'काम' की पूजा को महत्व मिला और वह 'मदनोत्सव' हो गया। 'काम' की पूजा आम के बौर और टेसू के फूल से की जाती थी और स्त्री–पुरुष उल्लसित होकर गीत गाते एवं नृत्य करते थे।

चंदेल नरेश मदन वर्मन के राज्यकाल (लगभग ११२८–६४ई०) में वसंतोत्सव का विवरण जिन मंडन के 'कुमारपाल प्रबंध' में मिलता है। वसंत और आन्दोलन रागों के गीत, दिव्य शृंगार से सजी स्त्रियाँ, आमोद–प्रमोद में मस्त आकर्षक युवक, कपूर, अगुरू, कस्तूरी, कुंकुम, चंदनादि से गधित मार्ग, संगीत से गुजित प्रत्येक भवन और देव–पूजन से निनादित प्रत्येक मंदिर। घर घर में सुंदर पकवान और भोजन के बाद ताम्बूल–सेवन। कपूर के चूर्ण से मनाया जाता है धूलिपर्वोत्सव। यह है चंदेलकाल की उत्सवी चेतना। इतिहासकार अल्बेरूनी ने भी उत्सवों की सूची में वसंतोत्सव को प्राथमिकता दी है।

इसी पृष्ठभूमि की कोख से जन्मी थी सखयाऊ फाग। पिता थे अपभ्रंश के लाडले छंद दोहा, जिनकी कीर्ति नौवीं–दसवीं शती से काव्यजगत में छा गयी थी। दिवारी उसकी जेठी बहिन थी जो गोपगिरि (ग्वालियर) के गोपों में रम गयी थी। महोत्सवनगर (महोबा) के गोरखगिरि (गुखारपर्वत) की वादियों में घूमती उसकी माँ 'साखी' ने उसे बहुत रोका, पर युवा फाग की अल्हड़ उमंगे उस विरागी बंधन की देहरी लाँघ कर चल दी। महोत्सवनगर, खजुराहो, कालिंजर आदि की सजी–धजी गलियों से ऊबकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गाँवों की चौपालों में उसकी तान गूँज उठी। फिर गई वह गोपगिरि अपनी जिज्जी से मिलने और वहाँ उसकी लोकरागनी इतनी प्रसिद्ध हुई कि सूर–नंददास जैसे कवियों ने उसे अपना लिया।

बुंदेली लोकगायकी की परख पैनी आँख से करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि दिवारी गीत में साखी–गायन के बाद वाद्यों की ध्वनि एक पंक्ति बनाती है, जबकि सखयाऊ फाग में शब्दों की ही पंक्ति खड़ी हो गयी और एक नई लोकगायकी का आविर्भाव हुआ।

सखयाऊ और राई दोनों बुंदेली लोककाव्य के आदिकाल की गाय की पद्धतियों हैं। सखयाऊ फाग मध्ययुग में प्रचलित न रह सकी, पर राई तो आज भी सोलह वर्ष की नवयुवती जैसी बनी–ठनी मन को मोह लेती है।

तोमर–काल में सांस्कृतिक केन्द्र बना ग्वालियर। देसी संगीत ने एक नई क्रांति की और विष्णुपद एवं ध्रुवपद नूतन गायकी और लोकभाषा का सहारा लेकर देश के कोने–कोने में छा गए। लोकगायकी में भी नई रवानी और नूतन ध्वन्यात्मकता आई। बुंदेलखंड की रियासतों के दरबारों में शास्त्रीय शैली की रागब्रद्ध फागों की तानें गूँजीं पर उनका प्रचलन लोक में न हो सका।

भक्ति–आंदोलन का केन्द्र ब्रज बना और ब्रज का रसिया बुंदेलखंड आया। रसिया कृष्ण तो यहाँ पहले से था, जिसे ७वीं शती के देवगढ़ (जिला ललितपुर) के दशावतार मंदिर और १०वीं –११वीं शती के खजुराहो (जिला छतरपुर) के लक्ष्मण मंदिर में उत्कीर्ण किया गया था, फाग का रसिया कृष्ण १६वीं १७वीं शती में आया, जब ब्रज और बंदेलखंड का सम्पर्क हुआ और संस्कृति का आदान–प्रदान होने लगा। ओरछा नरेश मधुकर साहि के राज्यकाल (१६वीं शती के उत्तरार्द्ध) में पारस्परिक संबंधों का सूत्रपात हुआ था, जब गोस्वामी विट्ठलनाथ उन्हें अपने मत में दीक्षित करने ओरछा आये थे। और भी कई उदाहरणों के साक्ष्य इतिहास में मिलते हैं। फलस्वरूप रसिया जैसे फाग गीतों का प्रभाव स्वाभाविक था। बुंदेली ने ब्रजी के रसिया को आत्मसात तो किया, पर काफी परिवर्तन के साथ। बुंदेली के रसिया की लय और गायन शैली कही बुंदेली लोकगीत बिलवारी की तरह है तो कहीं लेद के ताल–स्वरों में बंधी। बिलवारी के साथ जुड़ने वाली लटकनियां 'अरे हां या 'अरे हाँ री' का प्रयोग कर उसी पुराने लोकगीत की धुन में अन्य फागें भी बनीं जिन में से बहुसंख्यक भक्तिपरक थीं, लेकिन रसिया श्रृंगारप्रधान है।

इस अंचल में फाग की एक अनोखी रीति है। भौजी देवर को एक पटे (काष्ठपट्टिका) पर बैठाकर साड़ी और चुनरिया ओढ़ा देती है। पैरों में महावर, आँखों में काजल,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मस्तक पर बूंदा आदि से रंजित और अलकृत कर कपोलों पर गुलाल मलती है और रँग से सराबोर करती हुई फागुआ मांगती है। देवर फगुआ के रूप में मिष्ठान, आभूषण वस्त्रादि भेंट करता है। विवाह में समधिने इसी तरह समधियों से 'फगुआ' खेलती हैं। फाग में पुरुषों का भाग भी कम नहीं है वे गधों पर सवार होकर तरह–तरह के स्वांग रचते हैं और कूटोक्तियाँ कह कर मन की रसिकता बगरा देते हैं। दोनों तरफ से अबीर और रँग, कुमकुमे और पिचकारियाँ तथा गीतों के बोल घुलते रहते हैं। फिर भी इस युग के लोककाव्य में मर्यादा का उल्लंघन नहीं है। होली की रागिनी में कृष्ण ही नहीं राम–लक्ष्मण भी डूबे हैं –

बलि के द्वारे मची होरी, राजा बलि के।
कौना के हाँतै ढुलकिया सोहै, कौना के हाँतै मजीरा।
राम के हाँत ढुलकिया सोहै, लक्ष्मन के हाँतै मंजीरा।
कौन के हाँतै रंग की गगरिया, कौना के हाँतै अबीर झोरी।
राम के हाँतै रंग की गगरिया, लक्ष्मन के हाँतै अबीर झोरी।
राजा बलि के द्वारें मची होरी, राजा बलि के।

अठारहवीं शती के पूर्वार्द्ध के प्रसिद्ध कवि बख्शी हंसराज ने अपने **'ग्रंथ-सनेह सागर'** में फाग की लीला का वर्णन किया है, जिसमें राधा और कृष्ण अपने अपने दल लाकर फाग खेलते हैं। फाग में स्त्रियों और पुरुषों का लोकगीत गाना, परुषों का स्वाँग रचना, स्त्रियों पर अबीर–गुलाल घालना, पिचकारियों से रँग छोड़ना, स्त्रियों का हरे बसेंडा (बाँस की छड़ियों) से पुरुषों को तितर–बितर करना, पुरुषों की जेरी लगाकर खड़े रहना, दोनों ओर से गीतों द्वारा संवाद, राधा का चंद्रावलि को कृष्ण के पकड़ने के लिए बीड़ा, देना, छल–बल से कृष्ण को पकड कर नेत्रों में काजल लगाना और फगुआ माँगना। (कान पकर कर कुँवर कान्ह के फिर–फिर फगुआ माँगे) तथा कृष्ण का यह कहने पर कि 'अपने मन माने के फगुआ जो चाहै सो लीजै' उन्हें छोड़ देना आदि की कथा बुंदेली–फाग परम्परा की नयी कड़ी है।

इस अंचल के प्रसिद्ध कवि पद्माकर का एक छंद और उसकी एक पंक्ति का प्रबंध 'नैन नचाइ कही मुसकाइ लला फिर आइयो खेलन होरी।' छंद की महिमा है या प्रबंध की ? **''जगद्विनोद''** में गुलाल, अबीर और रँग की वर्षा के कई दृश्य अंकित हुए हैं। हुरियारों का घोष, धमार की धुन में गायन, पिचकारी की घालन, गलियारों की कहन, स्त्रियों का फगुआ लेना, बात–बात में बाबा की शपथ आदि कुछ बुंदेली फाग के चित्र हैं, जो कभी पद्माकर ने लिखे और कभी बोधा एवं ठाकुर ने। बोधा ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'को बरनै जो लखो इन आँखिन फागुन मास को धूमर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धस्सा।' कहाँ एक तरफ धूमर धस्सा (ऊधम) और कहाँ दूसरी तरफ खुला आमंत्रण –'लला फिर आइयो खेलन होरी।'

छंदों का कमाल रहा इस युग में। छंदयाऊ फाग भी अपने उत्कर्ष पर रही। वैसे तो छंदयाऊ और आख्यानक फागों की रचना १२वीं १३वीं शती से हुई थी पर लिखित फागें नष्ट हो गई थीं। १५वीं शती में दोहा के साथ रोला छंद जोड़कर नये प्रकार की फाग ग्वालियर में आई थी। १६वीं शती में लावनी का विकास हुआ, जिसने फागकारों को अपनी ओर खींचा। लावनी की रंगतों और उनके तीव्र आरोह–अवरोह वाले स्वर–संधान ने फाग गायकी पर सबसे अधिक प्रभाव डाला। फलस्वरूप लावनी की फागों का विकास हुआ। पहले टेक होती है, फिर छंदसंगीत के नाम से विभिन्न छंदों की योजना रहती हैं जिसमें दोहा, सोरठा, लावनी, कवित्त, सवैया आदि छंद प्रमुख रूप से प्रयुक्त होते हैं। उसके बाद उड़ान, फिर टेक और इस तरह रचना का एक चक्र पूर्ण होता है।

'रामरसिक भक्त' महारानी वृषभानुकुँवरि की लोककविता (१८७५–१९०६) की यह पंक्ति नई होरी की उद्घोषणा करती है। यह नीवनता चतुर्मुखी है। पहली, तो यह कि रसिक भक्तों की कविता लोक से जुड़ी और उन्होंने लोकोत्सवों–विशेष रूप में होली पर लोकछंदों में बहुसंख्यक रचनाएँ लिखीं। रसिकता के कारण कृष्ण की क्या कहें राम तक लंगर छैल हो गए। दूसरी, नवीन दिशा यह थी कि होली गीतों में संघर्षपरक राष्ट्रीयता भी प्रतिबिम्त होने लगी। बाँदा के नवाब शमशेर बहादुर द्वितीय (१८०२–२३ ई०) के अंग्रेजी सेना से संघर्ष की स्मृति हुरयारे गा उठे–'होरी मच रयी जमुना के घाट, दौनऊँ तरफ फौजन के ठाट। उतै ते लड़ैं गोरा फिरंगी, इतै से अकेलौ नवाब।'

सबसे महत्वपूर्ण तीसरी दिशा थी, अंग्रेजों और जमीदारों के शोषण से उत्पन्न निराशा के विरुद्ध लोकोत्सवी उल्लास जगाने का प्रयास, जिससे होली सामाजिक चेतना और एकता का माध्यम बनी। चौथी, नवीनता में लोकगीतों के पुनरुत्थान की सर्वथा नई कोशिश थी, जिसका नेतृत्व लोककवि ईसुरी ने किया। परम्परित होली और होली के लोकगीतों में नये प्राण फूँकने का श्रेय ईसुरी को ही है। चौकड़िया फाग का आविष्कार कर फाग की वस्तु और शैली दोनों में परिवर्तन ला दिया और फागगायकी को एक नया आयाम दिया। चौकड़िया के आधार पर ही गंगाधर व्यास ने खड़ी फाग की स्थापना की और एक पुष्ट एवं परिष्कृत रूप देकर उसे साहित्यिक मंच पर बैठाया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौकड़िया का उद्‌भव 'लाल फाग' से हुआ है। उसकी गायन शैली भी उसी फागरूप की ऋणी है। चौकड़िया के प्रथम चरण मे १६ मात्राओं पर यति है और उसका तुकांत वर्ण ही हर चरण के तुकांत में आना ज़रूरी है।

एक कड़ी दिमाग में उठी है कि 'दतिया' को रंग चिनार, सजन बरके रइयों हुरियारिन सें।' का रंग अच्छी तरह जानती हूँ सजन उन होरी खेलनेवालियों से सर्तक रहनां मन होता है कि हुरयारिन की जगह 'गवनारिन' कर दूँ। आप भी परखें–दतिया को रग चिनार, सजन बरके रइयो गवनारिन सें'। दतिया की गायकी के रंग का क्या कहना, उसकी बात ही अलग है। बुंदेली लोकगायकी में लेद का अविष्कार एक ऐतिहासिक घटना है। दतिया नरेश भवानीसिंह का राज्यकाल (१८५७–१९०७ ई०) ललित कलाओं के उत्कर्ष की दृष्टि से स्वर्णयुग कहा जाता है। उनके दरबार में कलाकारों का जमघट लगा रहता था। संगीत और नृत्य को विशेष सम्मान प्राप्त था। ऐसे अनुकूल वातावरण में लेदगायकी का प्रस्फुटन स्वाभाविक था।

आज के इस मशीनी युग में एक तरफ जीवन की यांत्रिकता है, दूसरी तरफ अति बौद्धिकता है और तीसरी तरफ भौतिकता की अतिशयता है। अतएव सर्वत्र निराशा और अशांति के रंग इतने गहरे हो गए हैं कि लोकोत्सवी रँग बदरँग पड़ रहे हैं। उपेक्षाभरी मानसिकता के खिलाफ लोकसंस्कृति के रंग से भरे गुब्बारे कुमकुमों की तरह घुलना शुरू हो गए हैं और एक नई आशा विश्वास के नये रँग लेकर होली खेलने चल पडी है। नए–नए लोकगीतों की पिचकारियाँ लिए आप देखें कि कैसे–कैसे रँग है उनमें –

फिर आइयो खेलन होरी लला।
केशरियाँ रँग घोर धरेंगे, बस पिचकारी लइयो लला।
संग रहेंगी सखियाँ हमारी, तुम रसियों संग अइयो लला।
हम तुम खेलेंगे होरी, भागोगे कैसे ?
पल्लो पकड़ ठाड़ी भई भाभी, हमरो फगुओ देखो, ... भागोगे कैसे

❐

हँसि हँसि फागु मनावती, चरन पलोटत जाउँ।
धन्य धन्य या रैनु कूँ, फिर ऐसी नहिं पाउँ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चहुँ दिस उड़ै अबीर, मिटै रे मन–मन की पीर

–डॉ० सन्तवख्श श्रीवास्तव

होली प्रीति का पर्व है, पर्व का अर्थ होता है, रीतेपन को भरना। मन–घट में जो प्रीति का खालीपन आ गया है उसको प्रीति से आप्लावित करना और इस प्रीति की प्रतीति में तन–मन–धन परिवेश सब कुछ परिहरण की वृत्ति रहती है। जब तक परिहरण नहीं, तब तक क्षण–क्षण नए लगने वाले रमणीय का ग्रहण कहाँ और कैसे हो ?

भारतीय संस्कृति परिहार और स्वीकार की संस्कृति है। इसमें विमुख होने की बात उन सभी वस्तुओं, बिन्दुओं से है जो मानवीयता को झंकृत नहीं होने देते अथवा झंकृत होने में बाधाएँ उपस्थित करते है। भारतीय सस्कृति की प्रक्रिया इस परिहार में किंचित मात्र भी हिचकती नहीं है। सभी दुर्बिन्दु चाहे उसके मित्र के हों, चाहे उसके समीपी के हों, चाहें उसके परिवेश के हों, चाहे उसके चिन्तन के हों, उनको उखाड़े बिना चैन की साँस नही लेती। मूल्य गुण उसके विरोधी शत्रु प्राण हन्ता राक्षस में ही क्यों न हों, वह उनसे भी अधिग्रहण करने में हिचकती नहीं। इसीलिए तो राम रावण की विद्वता को, उसके ज्ञान को ग्रहण करने के लिये लक्ष्मण को उकसाते हैं।

होली भी इसी स्वीकार और परिहार की प्रक्रिया का एक मूल्य है। होली का प्रतिवर्ष आना, फिर–फिर आना इसलिये है कि वह अपने रँग की होली के साथ विगत वर्ष के ईर्ष्या, द्वेष, अहं, वैमनस्य, शत्रुता, कटुकता, घृणा, कुण्ठा, कलंक को रँग दें, धो दें,परिष्कृत कर दें, परिहृत कर दें, और फिर वहाँ एक दम कोरे निष्कलंक प्यार, प्रीति–प्रतीति का दरिया बहने लग जाए। होली जितनी खेली जाती है उतनी ही खेलने की चाह और भरी रहती है। प्यार जितना पिया जाता है उसे उतना ही पीने की आकांक्षा रहती है। प्यार की सार्थकता भी तभी है कि पीने की कामना और बढ़ती जाए। इसीलिये तो रंग खेला जाता है। फिर धो लिया जाता है। और इस धुलने के साथ साथ विगत सारी पीड़ा, सारा दर्द, सारा संत्रास धुल जाता है और सारे दुर्मूल्यों से रहित मन–घट में प्रीति के बहुमूल्य को भरने की आस होती है, बस यही पृष्ठभूमि है होली की क्रीड़ा की।

होली में एक मस्ती है। इसी अलमस्ती में देवर–भाभी, ननद–भौजाई, बड़े–बूढ़े, प्रिय–प्रेमी सभी एक दूसरे को रँग भरी पिचकारियाँ लेकर तरबतर करने की धुन में रम जाते है। और ऐसे रम जाते हैं कि उनमें तनिक सा भी भेद नहीं रह जाता, छोटे–बड़े का, जात–पाँत का, कुल–कानि का, नर–नारी का, राजा–रंक का। क्योंकि प्रीति की तन्मयता का रस ऐसा रस है कि जब वह सराबोर करता है तो स्वयं रस ग्राहक को रसिया बना लेता है। रँग तो सिर्फ बहाने से खेला जाता है। बहाना ! भारतीय संस्कृति में बहाना कहाँ ? यहाँ तो बात है मन–मानस में प्रिय के रँग के संचरण की और बस इसी वृत्ति का प्रकटीकरण है रँग।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होली में दूर–दूर तक दिखावा बनावटीपन कहीं रह नही जाता। सारा तन, सारा मन, सारी आकांक्षा, सारी की सारी अन्तः चेतना रँग को रँगने में रँग जाती है, बाहर और भीतर का तन और मन का, आत्मा और परमात्मा का, प्रेमी–प्रिय का अन्तर कहीं दूर–दूर तक नहीं दिखता। होली में एक और बड़ी भूमिका है निराशा में आशा के संचार की। बिछुड़ने के अन्तःकरण को, प्राणों को छार–छार होने से बचाने के लिये संसार में कुछ है तो वह है पुनर्मिलन की आशा। पुनःआलिंगित होने का विश्वास। ठीक इसी कुसुमीय आशा को कृष्ण के लिये संचरित करती है राधिका और गोपियों के रूप में सारी समष्टि। सारी चेतना प्रेम के रँग में ऐसी रँग गई है कि वह स्वयं उल्टी कान्हा को मिटने से बचाने के लिए आशा बांधने की बात करने लगती है। वह इस नेह के रँग में ऐसी रँगी है कि यदि उससे किसी दूसरे रँग में रँगने की बात कही जाए तो कोसों तक उसे भाती नहीं।

ब्रज में राधिका के साथ श्रीकृष्ण के रूप में हर प्रेमी अपनी प्रियाओं के साथ रंग खेल रहे हैं। होली का हुर्राटा मचा रहे हैं, फाग मना रहे हैं। आनन्द, अबीर और केसर का रँग ऐसा चल रहा है कि इस ललपने में न केवल धरती, सारा नभ, सारे वन, सम्पूर्ण ब्रज लाल–लाल हो उठता है और गलियों में रँग गुलाल की कीचड़ मच रही है, सभी मन–मन में अति आनन्दित हो रहे है और हर बार मोद–प्रमोद में ऐसी होली खेलने का प्रयास कर रहे हैं जैसी पहले कभी न खेली हो।

श्रीकृष्ण लाल रँग डाल रहे है। न बड़े–बूढ़ों को छोड़ रहे है, न सखा छोड़ रहे है न सखियां, न डाल छोड़ रहे है न पात, न शत्रु छोड़ रहे हैं न मित्र, न प्रिय छोड़ रहे हैं न अप्रिय, न जड़ छोड़ रहे है न चेतन, समदर्शी जो ठहरे। रंग जिस पर डाल रहे हैं वह चाहे या न चाहे उन्हें तो हर कण को रँगना है। उन्हें तो अमृत रस रँग उड़ेलना हैं और ऐसे उड़ेलना है कि निखिल ब्रह्माण्ड, अखिल धरती, सम्पूर्ण सृष्टि के एक कोने का छोटा सा भी अंश बिना रँग के अरंगायित न रह जाय। क्योंकि इस अमृत रस से सराबोर करने के साथ साथ उन्हें पूरे जग की बुराई का विष भी तो पीना है। यदि विष नहीं पिया जाएगा तो अमृत की सार्थकता कहां होगी। अब प्रश्न है कि वह सांवरी–गोरी जो अपने को श्रीकृष्ण के रँग से रँगना नहीं चाहती तो सामने से हट क्यों नहीं जाती। पर नहीं, क्योंकि उसे प्यार पीना है और अन्तर्दाह की, उमस को जलाकर राख–राख करना है। इसीलिए तो वह बार–बार शब्दों से मना करती है पर वहीं की वहीं डटी रहती है जाती नहीं, क्योंकि वह जानती है कि यदि वह बार–बार मना करेगी तो कृष्ण रँग जरूर डालेंगे। छलिया और हठी जो ठहरे। इसलिए आओ हम अपने को साँवरी होकर रँगायें और कृष्ण होकर अबीर और गुलाल उड़ाऐं। सब ओर से एक ही धुन आये "चहुँ दिस उड़ै रे अबीर, मिटै रे मन–मन की पीर ❑

–साभार : अमर उजाला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पचास दिनों तक चलती है ब्रज में होली

–नर्मदा प्रसाद गुप्त

रंग–गुलाल का अनूठा पर्व होली सारे देश में अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। किन्तु ब्रज की होली अपनी अजब ओर अनूठी परम्पराओं के कारण सारे विश्व में प्रसिद्ध है। यहाँ होली का रँग वंसत पंचमी से लेकर चैत्र कृष्ण दशमी तक पूरे पचास दिनों संपूर्ण ब्रजमण्डल के कण–कण में छाया रहता है चैत्र कृष्ण द्वितीया से चैत्र कृष्ण पंचमी तक तो यहाँ होली अपने चरमोत्कर्ष पर रहती है जिसे देखने के लिये देश–विदेश से असंख्य लोग यहाँ आते हैं।

ब्रज के मंदिरों में बसन्त पंचमी से ही ठाकुर जी के नित्य प्रति श्रृंगार में गुलाल का प्रयोग किया जाना प्रारम्भ हो जाता है। साथ ही इन मंदिरों में राज भोग के बाद नित्य प्रसाद के रूप में भक्तों पर गुलाल की वर्षा की जाने लगती है। इसके अलावा होली जलाए जाने वाले विभिन्न स्थानों पर होली के ठाड़े भी गाढ़ दिये जाते हैं। शिवरात्रि से ढोल और ढप के साथ रसिया गान भी प्रारम्भ हो जाता है। हुरियारे भाँग और ठण्डाई की मस्ती में गा उठते हैं।

'आजु बिरज में होरी रे रसिया
होरी रे रसिया, बरजोरी रे रसिया
आजु बिरज में होरी रे रसिया
कौन के हाथ कनक पिचकारी
कौन के हाथ कमोरी रे रसिया,

ब्रज में होली की विधिवत शुरूआत फाल्गुन कृष्ण एकादशी को मथुरा–माट मार्ग पर मथुरा से १८ किमी. दूर स्थित मान सरोवर गांव में लगने वाला राधारानी के मेले से होती है। यहाँ श्री राधा रानी का भव्य मंदिर भी है। बताया जाता है कि यहां पर भगवान श्री कृष्ण ने राधा रानी के साथ रास किया था। साथ ही श्री राधाजी ने यहाँ स्थित प्राचीन कुण्ड में से प्रकट होकर श्री हित हरिवंश जी को दर्शन दिए थे। बाद को गोस्वामी वनमालीदास ने यहाँ होली उत्सव मनाना प्रारम्भ किया जो आज भी अपनी सनातन परम्पराओं को निभा रहा है।

मानसरोवर गाँव में जुड़ने वाले राधा रानी के मेले के दो सप्ताह बाद फाल्गुन शुक्ल नवमी को राधा रानी की बाल लीला स्थली व राधा–कृष्ण की प्रणय भूमि बरसाने में नंदगाँव के हुरियारों और बरसाने की गोपिकाओं के मध्य लट्ठमार होली होती है। जो कि न केवल अपने देश में अपितु विदेशों तक में प्रसिद्धा हैं। इसे देखने के लिये दुनिया के हरेक कोने से लाखों लोग प्रतिवर्ष यहाँ आते हैं। बताया जाताहै कि होली का त्योहार सर्वप्रथम बरसाने में ही मनाया गया था। बरसाना, दिल्ली आगरा राजमार्ग पर स्थित कोसी से ७ किमी० और मथुरा से (वाया गोवर्धन) ४७ कि.मी. की दूरी पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थित है। बरसाने की लठामार होली मे अन्य स्थानों की होली के अनुरूप रंग–अबीर एवं नृत्य संगीत के अलावा लाठियाँ चल कर भी रस की सृष्टि होती है।

रसराज भगवान श्री कृष्ण और रस सम्राज्ञी श्री राधाजी की लीलास्थली बरसाने में फाल्गुन शुक्लनवमी को बरसाने की गोपिकाओं के साथ लट्ठमार होली खेलने हेतु नन्दगाँव के तकरीबन छह सौ गोस्वामी परिवारो के हुरियारें अपनी–अपनी ढालों को लेकर नंदगाँव स्थित नन्दराय जी के मन्दिर में एकत्रित होते हैं और वहाँ से पैदल ही गाते–बजाते, नाचते–झूमते लगभग ६ कि.मी. दूर स्थित बरसाने पहुँचते हैं। बरसाने में वे –पीलीपोखर' पर स्नानादि कर बरसाने की गोपिकाओं के साथ लट्ठमार होली खेलने के लिए सजते हैं। वे अपनी ढालों को भी सजाते हैं। साथ ही वे चिलम पीते हैं, हुक्का गुड़गुड़ाते हैं और सिल–बटटा चलाकर भाँग–ठंडाई छानते हैं। इन सबके नशे से वह इतने मदमस्त हो जाते हैं कि उनके नेत्र, होठ आदि फड़क उठते हैं वे बताते हैं कि यदि वह यह सब न करें तो वे गोपिकाओं द्वारा किये जाने वाले लाठी प्रहारों को अपनी ढालों पर नहीं झेल पाएंगे। नन्दगाँव के इन हुरियारों में दस दस वर्ष के बच्चों से लेकर साठ–साठ वर्ष के बूढे तक हुआ करते हैं।

तत्पश्चात ये हुरियारे अपरान्ह लगभग तीन बजे नंदराय जी के मंदिर (नंदगाँव) का झण्डा लेकर अपनी पारंपरिक वेश–भूषा में नगाड़ों, मँजीरों की ताल पर होली–रसिया गाते , अबीर–गुलाल उड़ाते और नाचते–झूमते ढाई सौ सीढ़ियाँ चढ़कर बरसाने के ब्रह्मेश्वर गिरि के उच्च शिखर पर स्थित श्री राधारानी मंदिर में पहुँचते हैं। वहाँ श्री राधारानी की मनोहरी प्रतिमा के समक्ष उनका और बरसाने के गुसाइयों का समाज गायन होता है। इस समाज में नन्दगाव के गुसाईं अपने को कृष्ण का प्रतिनिधि मानकर श्री राधा जी के प्रतीक के रूप में बरसाने के गुसाइयों को और बरसाने के गुसाईं अपने को श्री राधा जी का प्रतिनिधि मान कर श्री कृष्ण के प्रतीक के रूप में नन्दगाँव के गुसाइयों को प्रेम भरी गालियाँ सुनाते हैं। साथ ही सभी पर टेसू के फूलों से बने रँग के द्वारा होली खेलते हैं। यहां से नन्दगाँव के हुरियारे मंदिर की सीढियां उतर कर रंगीली गली में प्रवेश करते है। जहाँ पर रंगो की बौछारों एव संगीत की मृदुल ध्वनियों के मध्य श्रृँगार रस से परिपूर्ण ठिठोली यानी हंसी मजा की जम कर होली होती है।

ठिठोली होली हो चुकने के बाद बरसाने की गोपिकाएँ (श्रीराधा रानी के मंदिर के गोस्वामियों की स्त्रियाँ) एवं नन्दगाँव के हुरियारे लट्ठमार होली खेलने हेतु बरसाने की रँगीली गली में एक छोटे से चौक (जहाँ तीन गलियाँ मिलती हैं) पर एकत्रित होते हैं। गोपिकाएँ चमकते–दमकते लहंगा–फरिया पहने हुए होती हैं। उनके हाथों में मेंहदी, पाँवों में महावर और आँखों में कँटीला काजल हुआ करता है। हार, हमेल हथुल और कर्णफूल आदि अनेकोअनेक आभूषण उनके अग–प्रत्यंग की शोभा बढ़ाते हैं। इसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ढप बाजौ रे, ढप बाजौ -

भाई चारे के इस पुनीत पर्व
'होली मिलन' पर बधाई स्वीकार करें।

बैंक ऑफ बड़ौदा

क्षेत्रीय कार्यालय,
लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

होली खेलत हैं गिरधारी –
होली का पर्व मंगलमय हो।
शुभ कामनाओं सहित –

हरदेव चतुर्वेदी

चेयरमैन समकेन ग्रुप

ए–20, ब्लॉक–1, समकेन हाउस, मोहन कौपरेटिव इन्डस्ट्रियल ऐस्टेट
मथुरा रोड, नई दिल्ली–110044
दूरभाष कार्यालय : 26951124–23–22

निवास : 26867123, 26968020 फैक्स : 26948636, 26954001

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मस्त महीना फागुन कौ

- डॉ० राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

दिन प्रतिदिन प्रकृति से दूर, और–दूर होते जा रहे जीवन में फागुन का महीना कब आ गया और कैसे बीत रहा हैए यह सोचने का भी समय लोगों के पास नहीं हैं क्योकि जीवन के प्रयोजन के संबध में भी बेतहाशा दौड़ती दुनियां से कौन पूछे? और क्यों पूछे? व्यक्ति–स्वातंत्र्य का जमाना है, इसलिए भी खतरा है कि मैं पूछूं तो कोई कह दे मेरी प्राईवेट–लाइफ से क्या मतलब है जी? मेरी मर्जी! इसलिए जीवन का प्रयोजन का सवाल लोकजीवन की परंपराओं में ही जाकर पूछ लेता हूँ। फागुन आ गया है, चलो हम–तुम सभी इस फागुन से साक्षत् करें।

ब्रज के गाँवों में वसंत–पंचमी से ही फागुन का रंग बिखर जाता है और गाँव का "खैरापति" "झाड़–झँखार" डाल कर होली की स्थापना कर देता है। यह मदनोत्सव का प्रतीक है। होली की स्थापना के साथ ही गाँव के गाँव मतवाले हो जाते है।

आज गाँव में ठाकुर चिरंजीव सिंह के यहाँ त्योहार "जगाने" जाना है। उनके यहाँ पिछले साल गमी (शोक) हो गयी थी। यह बात कैसे हो सकती है कि गाँव में सब लोग फागुन का मंगल मनावें और एक घर शोकग्रस्त रह जाय! इसलिए संध्या को सारे पंच एकत्र हुए और गीता का ज्ञान गाते हुए ठाकुर के यहाँ चल दिये –

ए जग जीवन ही कौ नातौ
ज्हाँ ते सरग झोंपड़ा साँचौ
जैसे मोती झरे ओस कौ
ब्यार चलें ढरि जाँतौ।
ए जग जीवत ही कौ नातौ।

इस प्रकार समझा–बुझाकर शोकग्रस्त व्यक्ति को "अथाँई" (पंचों की बैठक का स्थान) पर ले आये और फिर चौपई (गायक मंडली) चल दी। इस गाँव से उस गाँव। अपना–अपना ज्ञान, अपना–अपना गीत, अपना–अपना सुर और अपनी–अपनी ताल।

फागुन का महीना हास–परिहास का महीना है, नृत्य–गीत और संगती का महीना है, गुलाल–अँबीर और पिचकारी का महीना है। फागुन का महीना प्यार और मस्ती का महीना हैं, रास्ता–चलते राहगीर से अटकने और न बोलने–वालों से बोलने का महीना है। फागुन सुरीली तान और सुरीली ठंडाई का महीना है। आज "महाद्या" पर घुट रही है तो कल "भतरोड़" पर छन रही है–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओ हो हो हो
कृष्ण बलराम जमना मैया
ऐसी आबै हरि गुन गाबै
हरि के चरनाविंद में ध्यान लगाबै
अंत चित्त ना भटकाबै
जब आबै तब हाथी पै सबार
दानगढ़ बारे मानगढ़ बारे
मोरकुटी गहबर बन बारे
नंद के दुलारे जसुदा के प्रान प्यारे।

फागुन के व्यवहार का एक ही मर्म है कि किसी तरह प्रसन्नता बिखर जाय, मुसकान बिखर जाय, हँसी आ जाय। गाँवों में, फागुआ लेने को ससुराल जाने तथा वहाँ साली–सलहजों से हास–परिहास करने और उनके रसरंग में भीगने का रिवाज है। इन दिनों किसी के यहाँ शादी होती है तो समझो काका–मामा की 'गत' बन गई। पीठ पर "अर्राटे" के साथ दो हाथों की ऐसी छाप लगती है कि नानी की याद आना ही स्वाभाविक है।

फागुन का महीना मेला बन जाने और मेला बना देने का महीना है। चलते–चलाते गली–बाजार में साड़ी का पैकिट पटक दिया, रुपया पटक दिया और चुपचाप बैठ गये। राह चलता समझता है कि यह साड़ी किसी की गिर पड़ी है, नोट गिर पड़ा है, उसके मन में लोभ जगा और वह उसे उठाने लगा। बस, हँसी की फुहार बरस गयीं और कोलाहल होने लगा–"पाऊ है–पाऊ है।" वह बेचारा सन्नाटे में आ जाता हैं, नीची नजर करके लजाता है और सटक जाता है।

आप रास्ते में आगे बढ़े और पीछे से किसी लड़के नें 'फिरोजा' लगी डोरी खींच कर डिब्बा बजा दिया, जैसे कुत्ता रोया हो। आप हड़बड़ाने लगे और पीछे से अट्टहास बिखर गया। नीचे वाले ने टोपी में काटाँ उलझाया और ऊपर वाले ने डोर खींच दी तथा राहगीर की टोपी उड़ गयी। तालियाँ बजीं और टोल के हँसने लगे– बुरा न मानो होली है।

हँसी–हँसी में ही शिवरात्रि का दिन आया और शिव मंदिरों में मेला लग गया। टोल के टोल स्त्रियाँ चल दी। बेर, सिंगाड़ी, बेलपत्र और जल का कलश –

भोलाजी भंडारी तेरे दरसन आई रे।
दरसन आई तेरे परसन आई रे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिन में पूजा हुई और रात को जागरण। सबेरे 'बमभोला' बोलने लगे। घर में आज 'बमभोले' की रोटी बनी है–मूँग, चावल, कढ़ी, रोटी, गुलगुला। आदरपूर्वक बुला कर बमभोले (योगी) को आँगन में बैठाया और माँ ने उसके खप्पर की रोली–चावल से पूजा की। बमभोले 'जिमाया'। बमभोले बाहर चला पर गली के बालको ने बाहर से गेट बंद कर दिया और ठर्रकबाजी होने लगी। बाहर गली के बालक और अंदर बमभोला। लड़के बोले– बमभोले, अपने गुरु का नाम बताओ तब खोलेंगे। घुटा–मिला जोगी हुआ तो बोल दिया – मेरा नाम निरंजन नाथ गुरू का नाम गेंनीनाथ। पर यदि जोगी "ऐरा गैरा" होगा तो अटक गया।

अंधेरे पाख की एकादशी को पानी गाँव' में मेला जुड़ा था और शुक्लपक्ष की एकादशी को 'रमणरेती' में मेला जुड़ेगा। द्वादशी को खानपुर का फूलडोल है तथा पूनों को "फालैन गाँव" में प्रह्लाद का मेला होगा। आज "सुरीर–नौहझील" गाँव में मेला है तो कल बठैन कलां गाँव में। दाऊजी का "हुरंगा"" और "बरसाने की होली" देखने को तो विदेशों से भी लोग आने लगे हैं।

"फुलैरा–दोज" को क्वारी कन्या फूल बाँटने गयी थी। –फुलौरा गाती हुई अम्मा–दादी ने गोबर की गूलरी बनायी, नारियल बनाया तथा गोबर की ढाल–तलवार बना कर छत पर सुखा दी। घर के सभी लोग होली पूजने जायेंगे तब गोबर के ढाल–तलवार लेकर जायेंगे। होली की पूजा करके उस पर 'गूलरी' लपेट देंगे तथा ढाल लौट कर ले आयेंगे। जेबरी मे बाँध कर उन्हें टाँग देंगे। सालभर के लिए रक्षा का एक अनुष्ठान।

'फुलैरा–दोज' को ही अम्मा ने आंगन में 'घुरगुली' की जगह खोद दी– बच्चों की पट्टी के बराबर । संध्या को वहाँ लीप कर भाभी ने 'टिकुलिया' रक्खी और चून से सजा कर पूजा की। रंगभरनी–एकादशी के दिन से 'घुरगुली' में सूखें रंगों का प्रयोग होने लगता है, जैसे क्वार के महीने में सूखे रंगों की साँझी बनायी जाती है। अनुश्रुति है कि घरगुली होली की छोटी बहिन थी प्रतिव्रता और होली इलोजी की मँगेतर थी। इसलिए होली की पूजा तो चौराहे पर होती है तथा घरगुली की पूजा घर के अंदर आंगन में की जाती है और गीत गाया जाता है–

राजा बलि के द्वार मची रे होरी
कौन के हाथ रँगीलौ ढप सौहै कौन के हाथ गुलाल छरीं

फागुन के लगते ही ब्रज के मंदिरों में 'धमार' का गायन प्रारंभ हो जाता है और ढप बजने लगता है। – ढप बाजौ रे छैल मतबारे कौ ढप बाजौ रे। 'रसिया' की तो फागुन से यारई है, इसीलिए गोरी ने निर्भीक होकर कह दिया–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवर पै पहरीं मैनें हरी–हरी चुरियाँ
यार पै नैन करे कारे।
मत मारै दृगन की चोट, रसिया,
होरी मे मेरे लग जायगी।

जहाँ देखो वहीं ढप और ढोल बज रहे है तथा धरती से आसमान तक उल्लास का कोलाहल और गीत–संगीत–

'मृगनैनी तेरौ यार नवल रसिया'

कहीं चाँचर तो कहीं धपंग, कहीं झुमका तो कहीं बसंता, कहीं पतोला की होली तो कहीं सुखैया की होली। आंगन में अम्मा जी 'गुँझिया' बना रही हैं और ढोलक बज रही है–

मस्त महीना फागुन कौ, जी, कोई जीवै तौ खेलै होरी फाग
भला जी कोई जीवै, तौ खेलै होरी फाग।

धूल का दिन (दुल्हैंडी) होली का दूसरा दिन है सबेरे से ही होली का उन्माद है। न गरीबी को अपनी गरीबी याद है और न अमीर को अपनी अमीरी। बालक और बूढे सभी तो हँस रहे हैं। उन्मुक्त अट्टहास। देवर–भाभी की तो बात ही क्या? भाभियों ने देवरों की ऐसी गत बना दी कि वे कहानी बन गये–

लला, फिर आइयो खेलन होरी।

आज़ जब मनुष्य की संवेदना पथरा गयी हैं, एक आदमी को दूसरा आदमी अपना जैसा दिखाई नहीं दे रहा, फागुन की यह परंपरा बहुत कुछ बता सकती है हम जितना समझना चाहें और जितना समझ सकें।

खेलें तीन लोक ते न्यारी होरी, ब्रज के नर नारी :
होली की शुभकामनाएँ -

विष्णु स्वरुप अग्रवाल, खिलौने वाले
• अग्रवाल सेल्स कॉरपोरेशन • हरिश चन्द एण्ड सन्स
• अग्रवाल एजेन्सीज
कार्यालय : 29/4796, डिप्टी गंज, सदर बाजार, दिल्ली–6
शोरुम : एफ–8, श्रीराम पैलेस, तेलीवाड़ा, सदर बाजार, दिल्ली–6
निवास : 1535, आउटराम लाईन्स, किंग्जवे कैम्प, दिल्ली–9

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज बिरज में होरी रे रसिया

— डा० श्रीमती हर्षनंदिनी भाटिया

बंसत ऋतु शीत को पराजित कर मुस्कराने लगती है। समस्त प्रकृति भी अह्लादमय हो जाती है। जन–जन में आमोद–प्रमोद, उल्लास–प्रसन्नता की लहरियाँ हिलोरें लेने लगती हैं। बसंत की पूर्णाहुति ही आनंद प्रदान करनेवाली होली के रूप में आती है। होली के रंग के छींटों से संपूर्ण वातावरण रंगीन हो उठता है। सुवास का शृंगार किए बसंती हवा मंद मंद गति से विचरण करती हुई अधिक सुखदायी होती है।

समस्त भारत में इस अवसर पर सर्वत्र लहलाहाते हुए खेत दृष्टिगोचर होते हैं जिनको देखकर किसान हृदय में फूले नहीं समाते। जन–मानस में उल्लास की तरंगें उठने लगती हैं इसी उल्लास में सब झूम–झूमकर गा उठते हैं :–

आज विरज में होरी रे रसिया।
होरी रे रसिया, बरजोरी रे रसिया।।

संपूर्ण भारत में ब्रज की होली प्रसिद्ध हैं क्योंकि यह धूमधाम से मनायी जाती है। ब्रजभूमि में श्री कृष्ण और राधारानी की लोकरंजनी लीलाओं से जन–जन में रस प्लावित हो जाता है।

ब्रज की होली में बरसाने की होली अधिक प्रसिद्ध है। बरसाना राधारानी का घर है और नंदगाँव श्री कृष्ण का। राधारानी का वर्चस्व श्रीकृष्ण से अधिक है :–

डार–डार अरु पात–पात पै, श्री राधे राधे होय।

नंदगाँव से श्रीकृष्ण अपने सखाओं का समूह लेकर, डगर डगर में अबीर और गुलाल के बादल उड़ाते हुए तथा अपनी फेंट में रंग भरी कमोरी लिए हुए निकलते हैं। इधर राधारानी अपनी सखियों के साथ मन में सोचती हुई निकलती हैं

ठाड़ी रहौ न डरौ न भगौ, अब देखु जु हौ कछु खेलत ख्यालहि।
गाबन दै री बजावन दै, सखि आवन दै इतै नंद के लालहि।।
ठाकुर है रँगिहौं रँग सौं, अँग ओड़िहौं वीर अबीर गुलालहिं।
घुंघर में, धधकी में, धनार में हौं धसिहौं धरिले हौं गुपालहिं।।

इस अवसर पर दोनों ओर से चलकर दोनों दलउना जाते हैं, तब सब साथी एक साथ गाने लगते हैं :–

जुरि आयौ दल रसिया गोरी को।
इत राधा सिर छत्र बिराजै उत मोहन गिरधारी को।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इत राधा के संग गावै सहचरी, उत गावें बनवारी को।
हमरी राधा विन्दावन रानी, हमरो राज बिहारी को।
हमरी राधा रूप की राशि, रस को रासबिहारी को।।
झाँझ ढप आय जै जै बोलत, जै राधा जै मुरारी को।
ठाठ बाट सब साज समाना, को जीतै बल होरी को।।
परमानंद उमंग चलि आवत, सामरौ गोरी जोरी को।

दोनों दलों का जहाँ मिलन होता है वहीं पर होली प्रारम्भ हो जाती है। हाथों में मंहदी और पाँवों में महावर, लहँगा और नवरंग चुनरी विविध आभूषणों से सुसज्जित, शृंगार किए हुए बरसाने की गोपियाँ लाठियों से प्रेम–प्रहार करती हुई लठामार होली प्रारंभ कर देती हैं।

गोपों कें दल सिर पर ढाल बाँधे बाँहों में सींग के बने कवच पहने तथा हाथों में ढाल लिए स्त्रियों की लाठी के प्रहारों को झेलते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। विशाल वर्शक समूह 'लाड़िली लाल की जय' बोलते हैं। पुरुष वर्ग 'आई रे आई रे' कहते रहते हैं। यह होली से पूर्व ही समाप्त हो जाता है। दूसरे दिन नंदगाँव होली खेलने बरसाने के पुरुष जाते हैं। नंदगाँव की स्त्रियाँ बरसाने के पुरुषों पर लाठियाँ बरसाती हैं।

ब्रज के कण–कण में होली की धूम रहती है। एक अपूर्व उत्साह, अपरिमेय आनंद की मादकता छा जाती हैं। रँगभरनी एकादशी से ही सर्वत्र वातावरण रँगमय हो जाता है। मंदिरों में रंगीन फुब्बारे और अबीर–गुलाल की आँधियाँ चलने लगती हैं पुजारीजन दर्शकों पर रंग और गुलाल डालते हैं और भक्तजन प्रसाद मानकर धन्य हो जाते हैं। मंदिर में कीर्तनिया होली के पदों को गागाकर सब को प्रेमविभोर कर देते हैं।

होली के दूसरे दिन फूल डोल होता है। डोल पड़ता है और मूर्ति का शृंगार फूलों से होता है। इस परंपरा से पुष्पों से शृंगार करने की कला जीवित बनी हुई है। राधा जी का शृंगार कृष्ण जी के स्वरूप का और कृष्णजी का रूप राधा के स्वरूप का बनाया जाता है। इस भाव के पद गाए जाते हैं :–

रसिया को नारि बनाऔ री।
कटि लँहगा उर माँहि कंचुकी, चुँदरी सी उड़ाऔ री।
गाल गुलाल दृगन बिच काजर, बँदी भाल लगाऔ री।
नारायण तारी बजाय कै, यशुमति निकट नचाऔ री।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस अवसर पर पति ही परदेश चला गया हो तो विरहिणी को तो कुछ भी अच्छा नहीं लगता:–

हमें न सुहाऐ ऐसी होरी पियारे बिना।
जबहिं पिया परदेश सिधारे आय गई बैरिन होरी पियारे बिना।
अन्यजनों का बोलना भी नहीं भाता
ठाड़े ननदोई मोरे अरज करत हैं, खेलौं दुलैया होरी हमरें संग
बतिया काहू की मोहि न भाऐ पियारे बिना।
हमें न सुहाऐ ऐसी होरी पियारे बना।।

मीरा ने भी यही व्यक्त किया हैं :–

होली पिया बिन लागै खारी, सुनौ री सखि मेरी प्यारी।
सूनो गाँव देस सब सूनों, सूनी सेज अटारी।।
सूनी बिरहन पिय बिन डोले तजि दई पीत पियारी।

होली आनंद का त्योहार है होली के त्योहार की इस काव्यमयी कल्पना मात्र से आनंद मिलता हैं। कृष्ण की कल्पना आनंद रस निर्झर रूप में हुई है। ढोलक और मजीरे पर सब यह गाते हैं :–

रंग डारूँ रे तो पै रंग डारूँ, नेंकु आगे आ।
रंग डारूँ तेरे अंगन सारूँ, अरे तेरे गालन पर गुलचा मारूँ।
एड़ी टेड़ी पगिया बाँधे अरे तेरी पगिया पै फूल पारूँ।।
ब्रज दूल्हे ए छैल अनोखे, अरे तो पै तन मन वारूँ।

होलिकोत्सव में आनंद, उल्लास और सौन्दर्य का सम्मिश्रण है।

रँगीलौ मौसम प्यार कौ :
होली की बधाई स्वीकार करें –

विनोद खुराना
खुराना बैंकेट्स
एक बार सेवा का मौका अवश्य दें
17, कृष्णा मार्किट, कालकाजी, नई दिल्ली,–110019

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रज की होरी

–प्रो० डॉ. रामनारायण गोयल

ब्रज मंडल में पर्वो और त्योहारों से लगभग प्रत्येक दिन जन–जीवन में एक नई स्फूर्ति बनी रहती है। हिन्दू कलैण्डर में चैत्र मास प्रथम मास माना जाता है, क्योकि इसी मास से नये वर्ष का प्रारंभ हो जाता है। नव रात्रि चैत्र मास का बहुत बड़ा पर्व माना गया है और इसी पर्व में रामनवमी मनाई जाती है। किन्तु चैत्र मास के प्रथम दिन अर्थात् प्रतिपदा को धुलैंड़ी मनाई जाती है अर्थात् रंग और गुलाल सर्वत्र पृथ्वी से लकेर आकाश तक उड़ता हुआ दिखाई देता है। नर और नारी, वृद्व और बच्चें सभी रंग की मस्ती में झूम–झूम कर एक दूसरे पर रंग छिड़कते हैं। पिचकारी भर–भर कर कपड़े रंगते है और चिकने चुपड़े गालों पर लाल, हरे, नीले यहाँ तक कि काले रंग का लेप चढ़ा देते है। और कहते हैं, बुरा न मानो होली है। अब ऐसे में कौन बुरा मानेगा और जो बुरा मानेगा वह और अपनी दुर्गति करायेगा।

होलिका दहन का पर्व फाल्गुन के अंतिम दिन अर्थात् पूर्णिमा को मनाया जाता है। इस दिन प्रत्येक मोहल्ले और सड़कों के चौराहों पर ईंधन, लकड़ी, काठ–कटम्बर आदि को एकत्रित किया जाता है और संध्या काल में इस ढेर में अग्नि प्रज्वलित की जाती है, जो किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण के कर कमलों से कराई जाती है। इस समय आस पास के सभी वृद्ध, बाल और गोपालों के साथ वहाँ एकत्रित होते हैं। उनके हाथों में बाँस में बंधी गेहूँ और जौ की नई फसल की बालियाँ होती हैं। प्रज्जवलित हुई अग्नि की वे सभी परिक्रमा देते हैं। हाथ से लाई हुई बालियों को इस अग्नि में भूनते हैं और फिर प्रसाद स्वरूप उनको एकत्रित लोगों में बाँटते हैं। बड़े छोटे का भेदभाव समाप्त कर आपस में गले मिलते हैं और इस प्रकार भाई चारे का प्रसार करते हैं। इस प्रकार होली के दिन पुरानी दुश्मनी समाप्त कर मैत्री भाव उत्पन्न किया जाता हैं। गले मिलने से आशय यही होता है कि आज से हम फिर मित्र हैं। हमारा मन साफ है, द्वेष की भावना अब दूर हो गई हैं।

होलिका–उत्सव का वर्णन भविष्य पुराण में मिलता है, जो इस प्रकार है–

अयं पंचदशी शुक्ला फाल्गुणस्य नराधिय।
शीत कालान्त सम्प्राप्तो प्रातर्मधु भविष्यति।
अभयं सर्वलोकानाम दीयतां पुरुषोत्तम।
यथा ह्राशंकिता लोका रमन्ति च हसन्ति च।
नाना रंग मयैवस्त्रैः चन्दनागुरु मिश्रितैः।
अबीर च गुलाल चमुखे ताम्बूल भक्षणम।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात्, राजन शीतकाल का अंत है, फाल्गुनी पूर्णिमा के पश्चात् मधुमास होगा। सभी को अभय दीजिए, जिससे ये निर्भीक होकर हंसें और खेलें। रंग–बिरंगे वस्त्र पहनकर चंदन, अबीर और गुलाल लगाकर पान चबाते हुए एक दूसरे पर रंग डालने के लिये पिचकारियाँ लेकर निकलें, एक दूसरे को गालियाँ देकर हसें, स्त्रियाँ नाचें। जिसके मन में जो आये सो कहे। ऐसे शब्दों से तथा हवन करने से यह पापिनी ढूँढा (होलिका) नष्ट हो जाती है।

होली के इस पौराणिक वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह त्योहार अपूर्व उल्लास का या यूँ कहिए हुर्दंग और मस्ती का त्योहार है। इस त्योहार की उत्पत्ति होलिका नामक राक्षसी के दहन (जलने) से हुई हैं। होलिका प्रह्लाद के पिता हिरण्यकश्यप की बहिन थी। होलिका को वरदान प्राप्त था कि वह जिस किसी को भी अपनी गोद में लेकर अग्नि की ज्वाला में बैठेगी, उसका स्वाहा हो जावेगा अर्थात् वह जलकर राख हो जावेगा, किन्तु अग्नि की लपट होलिका का कुछ भी अनिष्ट नहीं कर पावेगी। इसी वरदान का लाभ उठाकर हिरण्यकश्यप ने अपने प्रिय पुत्र भक्त प्रह्लाद से छुटकारा पाना चाहा। प्रह्लाद का अपराध था केवल यही कि वह अपने पिता के शत्रु परमेश्वर को ही जपता रहता था, जो हिरण्यकश्यप को असह्य हो रहा था। होलिका की गोद में प्रह्लाद को बैठाकर चारों ओर लकड़ी चिनी गई और अग्नि प्रज्वलित की गई। देखते ही देखते होलिका इस अग्नि में स्वाहा (जलकर भस्म) हो गई और प्रह्लाद का बाल बांका भी नहीं हुआ। प्रह्लाद अपने प्रभू के भजन में मग्न था। होलिका की समाप्ति के कारण होलिका–दहन नाम पड़ा और उसी दिन से होली जलाने के त्योहार की नींव पड़ी।

होली विश्व के लगभग सभी देशों में मनाई जाती है।(देखिऐ, लेख, 'विदेशों में भी मनाई जाती है होली। हां, उसके मनाने की रीति अथवा तरीके भिन्न–भिन्न होते है। चीन, अमेरिका, जर्मनी, इटली, पोलैंड, इग्लैंड, यूनान, आस्ट्रेलिया, जापान, स्विटजरलैंड आदि देशों में वहां के निवासी भी होली मनाते हैं। यूँ विश्व के हर कौने में भारतीय मूल के लोग जाकर बस गये हैं, और वे अपने देश भारत को याद करते हैं, यहाँ के तीज–त्योहार के बारे में जानने के लिये उत्सुक रहते हैं, किन्तु सभी महत्वपूर्ण देशों में देवालयों (मंदिरो) की स्थापना हो जाने से भारतीय मूल के लोगों में इस मस्ती भरे त्योहार को मनाने की ललक जाग् उठी हैं। फिर 'मीडिया' के प्रचार से, विशेष रूप से टेलीविजन में दिखाए जाने वाले कार्यक्रमों द्वारा उनकी प्रीति इस त्योहार क़ो मनाने के लिए और भी जागृत हो गई है।

भारत में सभी प्रदेशों में यह मस्ती का त्योहार एक अथवा दो दिन के लिये मनाया जाता है, किन्तु ब्रजमंडल–विशेषरूप से मथुरा जनपद में यह पर्व ५० दिन तक मनाया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है। वसंत पंचमी, (जो माघ के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि है) से ब्रज के मंदिरो से गुलाल की होली शुरू हो जाती है और फाल्गुन मास की शुक्लपक्ष की दशमी तक ठाकुर जी गुलाल से होली खेलते हैं। मंदिरों में पुजारी लोग दर्शनार्थियों पर गुलाल फेंकते हैं और दर्शनार्थी उस गुलाल को ठाकुर जी का प्रसाद समझकर धारण करते हैं। मुझे याद आता है, फाल्गुन मास में, मैं एक बार नाथद्वारा (उदयपर–राजस्थान) श्रीनाथ जी के दर्शन करने पहुँच गया। दोपहर के दर्शनों के समय वहाँ के पुजारी ने एक मुट्ठाभर गुलाल मेरी तरफ फैंका जो मेरे सर पर पड़ा। मेरे उदयपुर के साथियों ने मुझसे कहा– 'प्रोफेसर साहब आज तो आपके भाग्य खुल गये। ठाकुर श्रीनाथ जी की आप पै अपूर्व कृपा है गई। मैंने उनको उत्तर दिया– भइया, मो पै तो ठाकुर जी की कृपा सदैव ही रहै है।'

फाल्गुन शुक्ला एकादशी से रंग की होली शुरू हो जाती है। ब्रज के प्रत्येक मंदिर में ठाकुर जी, सोने, चाँदी की बनी पिचकारियों से टेसू के फूलों का पीला रंग पुजारी लोग दर्शनार्थियों और प्रभु–भक्तों की ओर फेंकते हैं। इस रंग के डालने से एक अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है। कुछ मंदिरों में रंग के फव्वारे भी चलते हैं। जो बहुत ही अद्‌भुत् दृश्य उपस्थित कर देते है। ब्रज की होली जग–प्रसिद्ध है। उसका मुख्य कारण, जो मुझे प्रतीत होता है वह है– राधा–कृष्ण की होली। श्रीमद्‌भागवत् पुराण में भी वर्णित है – राधाजी के साथ कृष्ण का होली खेलना। यही परंपरा आज भी नन्द गाँव और बरसाने की होली द्वारा निभाई जा रही है। नन्दगाँव से पण्डे बरसाने आते हैं और होली खेलने का न्यौता देते है। इसे पांडे–लीला का नाम दिया गया है। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को नन्दगाँव का पण्डा श्रीकृष्ण की ओर से बरसाने आकर वहां की गोपियों के समक्ष होली मनाने/ खेलने की बात रखता है। इसे होली खेलने का न्यौता भी कहा जाता है। नन्दगाँव के पंडा टोल बनाकर बरसाने आते हैं। श्रीजी (लाडलीजी राधाजी) के मंदिर के दर्शन करते हैं। इसी दिन लाड़लीजी के मंदिर में छप्पन भोग का प्रसाद लगता है। दूर दूर से सहस्रों की संख्या में यात्री/दर्शनार्थी बरसाने इस होली को देखने आते हैं। इस होली का नाम है, 'लठमार होली'। दोपहर के पश्चात् नन्दगाँव के पण्डे लोग मंदिर की सीढियों से भागते हुए उतरते हैं। भगवान श्रीकृष्ण की लाल ध्वजा लेकर टोल के टोल मस्ती में फाग गाते हुए एक संकरी गली में आते है–इस गली का नाम है रंगीली गली–

'फाग खेलन बरसाने आये हैं नटवर नन्द किशोर।
घेर लयी सब गली रंगीली, छाय रही सब छटा रंगीली
बंशी की घनघोर.....

इस रँगीली गली में उतरते ही, बरसाने की नई–नवेली नंदगाँव के इन हुरिहारों पर 'लट्ठ' (डंडे) बरसाती हैं। ये हुरिहारे अपने को 'ढाल' से बचाते हैं। बचाते बचाते फिर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी कहीं न कहीं खून बह निकलता है, किन्तु ब्रज–रज लगाते ही वह बंद हो जाता है। ऐसी है लठामार होरी बरसाने की। दूसरे दिन बरसाने के पण्डे होली खेलने नन्दगाँव जाते हैं और नन्दगाँव में जमकर होली मनाई जाती है। भाँग–ठंडाई घोटी जाती है। और भरपेट भोजन कर, भँग की तरंग में होली गायन होता है। इस मस्ती के आलम में सारा नन्दगाँव झूम उठता है।

होली खेलने से पूर्व ब्रज के प्रत्येक मंदिर में होली के पदों का गायन ठाकुरजी के समक्ष किया जाता है। आज भी सारंगी, हारमोनियम, मंजीरा, ढोलक, मृदंग की ढाप पर यह गायन होता है। इसे 'समाज गायन' कहा जाता हैं। श्री द्वारकाधीश मंदिर मथुरा में नगाड़ा बजता है और इस नगाड़े की धुन पर रसिया और फाग गाये जाते हैं। संगीत का समा बँध जाता है।

बिहारीजी के मंदिर, वृंदावन में रात्रि ८ बजे रसिया का गायन होता है। बोल होते हैं–

'होली खेलौ तो कुंज पधारौ रसिया'

वृंदावन में ही श्री राधावल्लभजी के मंदिर में राधा–कृष्ण के स्वरूयों को हाथ पर बैठाकर कीर्तन और गीतों के साथ शोभा यात्रा निकाली जाती है। बोल होते हैं–

'निकसं है मोहन लाल, ब्रज में खेलन फाग री।'

मंदिर के द्वार पर पहुंच कर टेसू के रंग बरसाये जाते हैं और धमार–गायन होता है–

दिन दूल्हा मेरो एक बिहारी, दुल्हन नित्य किशोरी...।

अस्तु, ब्रज के मंदिरों की होली देखने लायक है, मस्ती के आलम में भक्त और दर्शनार्थी विभोर हो जाते हैं। रँग से तन रंगता है और गायन से मन रंगता है– चारों और ब्रज की वायु में ढप की आवाज सुनाई देती है और सुनने को मिलता है होली का गायन–

'ब्रज मंदिर आज मची होरी, ब्रज मंदिर,
बाजत बीन, मृदंग, झांझ, ढप,
गावत चंद्रमुखी गोरी, ब्रज मंदिर.....,
ग्वाल वाल लैके पिचकारी,
अबीर गुलाल भरे झोली–ब्रज मंदिर,
हिल मिल फाग परस्पर खेलत।
रंग चलाय, मलत रोरी। ब्रज मंदिर.....

इस प्रकार से होली के रंग का उत्सव हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है।

पद्माकर कवि की इन पक्तियों के साथ इस छोटे से लेख को समाप्त करता हूँ।

'फागु की भीर अभीरन में, गहि गोविन्द लै गई भीतर गोरी।
भाई करीइमन की पद्माकर, ऊपर नाई अबीर की झोरी ।
खेंचि पटंबर अंबर मेलि, विदा दई मींज कपोलन रोरी ।
नैन नचाइ कही मुस्काई, लला फिरि आइयो खेलन होरी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रज-देवालयों में होली पर्व पर 'समाजगान'

डा० राकेश बाला सक्सेना

ब्रजभूमि प्राचीनकाल से ललित कलाओं का केन्द्र रही हैं। वर्तमान में भी यह परम्परा अत्यन्त समृद्ध हैं। देखा जाय तो ब्रज के सभी पर्व संगीतात्मक हैं परन्तु होली पर्व पर संगीत अपने चरमोत्कृष्ट स्तर पर होता है। फागुन के मास में ब्रज की रज का कण–कण लावण्यमय व प्रतिपूरित हो उठता है। इस अवसर पर ब्रज की धरोहर ध्रुवपद–धमार, रसिया, झूमर तथा लावनी आदि गेय–विधायें गाई जाती हैं जो होरी–बसन्त ऋतु आदि के प्राकृतिक उल्लास को और अधिक रसमय बनाकर हृदय की अनुभूतियों को तरंगित कर देती हैं। वसन्तोत्सव की समाप्ति माघ शुक्ल १४ को होने पर माघशुक्ल १५ से होली पर्व प्रारम्भ होता है जो फागुन शुक्ल १५ होली दहन पर समाप्त होता है। फागुन शुक्ल १५ और चैत्र कृष्ण १ (पड़वा) होली के उत्सव की विशेष तिथियां मानी जाती हैं क्योंकि फाल्गुन शुक्ल १५ को स्थान–स्थान पर होलिका का दहन होता है तथा चैत्र कृष्ण १ को 'दुल्हैंड़ी' का पर्व होता है।

होली पर्व का उल्लेख मत्र–तत्र शास्त्रों में भी मिलता है –

'पिचकारी लई होरी खेलें फुल छड़ोथी धंमा धंमा
ब्रजनी ते गोपीओ गुलाल लेइने चाल चले छे ठंमा ठंमा
पंच शब्द बाजां बाजत त्यां–झालर घंटनी ठंमा ठंमा'

(श्रीनाथ जी की प्राक्ट्य वार्ता पृष्ठ १४०)

'माघ सुदी संध्या को होली डांडे कौ पर आज से होरी धमार को समाज प्रारम्भ होय।'

(श्री हित सुधा सागर पृष्ठ ३५२)

'फागुन सुदी २ फुलैरा दोज से रंगदार बेलबूटा आदि चित्रित चौदैड़ी में बिराजै, श्रृंगार समय आज से फेंट गुलाल की धारण करें..... समाज में गो० किशोरी लाल जी कौ पद 'रंग रंगीले दोऊ नवनिकुंज में होय' कै परदा आ जामें और श्री जी महाराज भीतर पधारे दर्शन खुले पीछे शयन भोग आवें व्याहवले में हमेशा शयन आतरी, जगमोहन में ही होय.....गौरी में 'प्रथम यथामति प्रणऊ श्री वृन्दावन अतिरम्य' ये पद ढाई या तीन घंटे में जाय के होय जब पद हो जाये ..... किंचित गुलाल की थाली सन्मुख रहै.... ..सन्ध्या भोग तक डोल के पद होय'

(श्री हित सुधा सागर' पृष्ठ ३५२)

होरी के अवसर पर ब्रज में सभी वैष्णव सम्प्रदायों में समाजगान के अन्तर्गत वाणियों का गायन ध्रुवपद–धमार गायन शैली में किया जाता है।–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'इक गावत है धमारि इक एकनि देत गारि' (सूरसागर)
'खेलन आई धमारि नव तरुनि गोप कुंवरि' (कृष्णदास)
'गावत फाग 'धमार' हरषि भर हलधर, और सब ग्वाल' (नन्ददास)

यद्यिप ब्रज के देवालायों में –समाजगान' के अन्तर्गत पदगायन अधिकतर धमार ताल, अथवा चर्चरी ताल में किया जाता है तदपि फाल्गुन मास में किसी भी ताल में गाये जाने वाले पद को 'धमार' संज्ञा ही दी गई हैं। फाल्गुन के सभी होरी गीतों में अधिकतर पखावज या मृदंग वाद्य से तो संगीत की ही जाती है परन्तु श्री राधा–कृष्ण के होरी खेलने में एक धूमधाम और गोपियों द्वारा रंग, अबीर गुलाल आदि श्रीकृष्ण के ऊपर डालने से नटखट कृष्ण का गोपियों को घेर लेना– इस प्रकार की अल्हड़ धूमधाम में परवावज के साथ साथ अन्य वाद्यों का भी प्रयोग कर लिया जाता है – जैसे झांझ, ढोलक, स्वरमंडल, उपंग, झालर, रबाब, मुरली आदि। इन सभी वाद्यों की मधुर ध्वनि से ब्रज में श्रीराधा–कृष्ण की प्रेमभरी पिचकारियों से सराबोर ब्रजभूमि में होली के रसरंग की वर्षा होने लगती है।

ब्रज में होली पूरे सत्तर दिन खेली जाती है और विशेष बात इन समाजों की यह है कि होली के अवसर पर इष्ट की नित्य सेवा में भी होरी धमारें ही गाई जाती हैं। वृन्दावन में यह समाज मंदिरों में विराजित सेव्य–मूर्ति को सम्मुख तो होता ही है परन्तु यदि कोई व्यक्ति उत्सव विशेष पर समाज को आमंत्रित करना चाहे तो उसके निवास स्थान पर अथवा किसी अन्य स्थान पर कहीं भी किसी भी समय बैठाया जा सकता है। वह व्यक्ति समाज प्रिय श्रोताओं को यह कह कर आंमत्रित करता है कि "आज होली का समाज है"। तात्पर्य यह है कि होली पर्व पर देवालयों में तो समाज के अन्तर्गत होरी धमारें गाई ही जाती हैं परन्तु ब्रज के घर–घर में भी होरी का समाजगान बैठाया जाता है।

विषय हेतु प्रसंगवश समाजगान के सम्बन्ध में यहाँ वर्णन आवश्यक हो जाता है। समाजगान में 'समाज' शब्द का अर्थ है 'समूह' तथा 'समाजगान' से तात्पर्य है – आध्यात्मिक उद्देश्य से प्राचीन रसिकाचार्यों के रस के पदों को एक विशेष पद्धित से सामूहिक रूप से गाना जिसके दिव्य रस से समाज को सुव्यवस्थिता, सुदृढ़ता तथा सृजनात्मक शक्ति प्राप्त हो सके। इसीलिये सभी वैष्णवाचार्यों ने अपनी–अपनी आराध्य की नित्य का नैमित्तिक रसोपासना में 'राग' मार्ग को अपनाते हुये समाजगान पद्धित को जन्म दिया। समाजगान में प्रधान गायक 'मुखिया' नाम से जाना जाता है तथा प्रधान गायक मुखिया का शेष समाजी अनुगमन करते हैं जो संख्या में कुल चार या पांच होते हैं। इन्हें –झेला 'दोहार' या ' झालरिया' भी कहा जाता है। समाजगान में शास्त्रीय संगीत की रागरागिनियों , तालों तथा संगीत की ध्रुवपद व धमार आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शैलियों का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है जो संगीत साधना के हेतु न हो कर ईश स्तुति में आराध्य की भक्त्यात्मक साधना के लिये होता है, अतः इसी कारण स्वर वैचित्र्य की अपेक्षा इष्टदेव के गुणगान तथा स्तुतियों के अनुकूल ही स्वरों का भावात्मक रूप प्रधान रहता हैं। समाज में स्वर की अपेक्षा अक्षर की प्रधानता रहती है। इन समाजों में आचार्यो की वाणियों के लम्बे–लम्बे होरी के पद निरन्तर ढ़ाई–तीन घंटे तक गाये जाते हैं। होरी पर्व पर समाजगान में अधिकतर राग जैतश्री, चैतीगौरी, राइसौ, झिंझोटी, ललित, देशकार, देवगन्धार, भैरव, अड़ाना, धनाश्री, बसंत सोहनी, काफी आदि रागों को रस, भाव, समय व ऋतु के अनुसार गाया जाता है।

समाजगान की चर्चा करते हुये नंदगाँव तथा बरसाना के होरी समाज को कदापि नहीं भूला जा सकता है। यहाँ के रसिया आदि का तो कहना ही क्या यहाँ समाज में पच्चीस या तीस अथवा कभी–कभी इससे भी अधिक समूह में रसिया आदि गाये जाते हैं। यह समूह अधिकतर दो दलों में विभक्त हो जाता हैं– मुखिया पक्ष तथा झेला पक्ष। झेला पक्ष मधुर स्वरों मे गाने वाले मुखिया पक्ष का अनुसरण कर उसको उच्चरित स्वरों में दोहराता हैं। नंदगाँव बरसाना का होरी–समाज ब्रज की अनुपम संस्कृति की झांकी पर प्रकाश डालता हैं। बरसाना के समाज में श्रीराधा पक्ष तथा नन्दगाँव के समाज में श्रीकृष्ण पक्ष सखा–भाव की प्रधानता रहतीहै यहाँ के रसियाओं के अन्तर्गत रंग गुलाल अबीर की पोटों से ब्रजभूमि का आकाश 'उड़त गुलाल लाल भये बादर' के रूप में गुलाबी तथा धुधंला हो जाता है तथा सहस्त्रों ब्रज वासियों का स्वर कोलाहल बन कर अनेको ढ़फ, झांझ नगाड़े, मृदंग, मंजीरों की झनझनाहट से ये रंगारंग रसिया गुंजित हो उठते हैं। नन्दगाँव बरसाने में 'लठामार होली' भी ब्रजसंस्कृति की अपनी अनूठी विशेषता है जो फागुन शुक्ल नवमी को मनाई जाती हैं तथा जिसमें श्रीराधा कृष्ण के भावरूप द्वारा स्त्री तथा पुरूषों में होली की पवित्रा बनी रहती है। यथार्थ में ब्रज की यह होली असाधारण है जहाँ ब्रजवासियों के मधुर कंठों द्वारा **'आज बिरज में होरी रे रसिया'** जैसी परम्परागत धुनें सहज रूप में फूट पड़ती हैं।

इस प्रकार ब्रज के देवालयों तथा ब्रजवासियों के समाज संगीत का अनेक परम्परायें यहां पनपी हैं जो जीवन को निरन्तर कलात्मक, सरसता तथा जीवंतता से ओत–प्रोत बनाये रहती हैं। ब्रज के देवालयों में गुरूमुख एवं शिष्य–प्रशित्यों के रूप में ही परम्परागत रचनायें कंठस्थ किये जाने की प्रणाली रही है। इसीलिए कालावधि के कारण रागों में कुछ परिवर्तन हो जाना सहज है जिसके फलस्वरूप कुछ पदों के राग नाम भी वर्तमान में या तो अज्ञात है अथवा वे एक धुन के रूप में परिवर्तित हो गये हैं तदपि उनको बिना परिवर्तन किये उसी प्रकार कंठस्थ करके गायन करना ही अति आवश्यक माना जाता है। होरी–समाज की कुछ इसी प्रकार की परम्परागत धुनें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेखिका को ब्रज के समाजगायकों से साक्षात्कार करने पर प्राप्त हुई हैं जो उदाहरण स्वरूप यहाँ कुछ प्रस्तुत की जा रहीं हैं –

यह पद होलिकोत्सव के अवसर पर दुलैंढी के दिन गाया जाता है –

रचयिता – स्वामी हरिदास जी

सुनि धुनि मुरली बन बाजै, हरि रास रच्यौ।
कुंज कुंज द्रुम बेलि प्रफुल्लित मंडल कंचन मनिन खच्यौ।
नृत्तत जुगल किसोर जुबति जन, मन मिलि राग केदारौ मच्यौ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा – कुजबिहारी,
नीकैं (आजु) प्यारौ लाल नच्यौ।

('केलिभाल वाणी' पद–५२)

यह पद दुलैंढ़ी अर्थात् चैत्र कृष्ण १ को गाया जाता है–

रचयिता – श्री हित हरिवंश जी

पद

प्रथम राधा मति प्रणऊँ श्री वृन्दावन अति रम्य।।
श्री राधिका कृपा बिनु सबके मननि अगम्य।।
वर यमुना जल सींचन दिन ही शरद बसन्त।।
विविध भांति सुमनसि के सौरभ अलि कुल मन्त।।
दोऊ कर तारिनु पटकत लटकत इत उत जात।
हो हो होरि बोलत अति, आनन्द कुलकात।।
अति उदार बिबि सुन्दर सुरत सूर सुकुमार।।
जै श्रीहित हरिवंश करौ दिन दोऊ अचल विहार।

('श्री हित चतुरासी' पद–५७)

आज विरज में होरी रे रसिया –
भात्र मिलन के इस शुभ अवसर पर होली की
शुभ कामनाएँ स्वीकार करें।
मुरारी लाल गर्ग
ब्रजवासी आर्ट प्रैस लिमिटेड
ई–46/11, ओखला इन्डस्ट्रियल एरिया, फेज–2, नई दिल्ली–110020
दूरभाष : 26841897, 26314115 फैक्स : 26324230
ई.मेल : brijbasi@bol.net.in

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(खण्ड ख)

होली राजनेताओं की

अटलबिहारी वाजपेयी मान्नीय प्रधानमंत्री

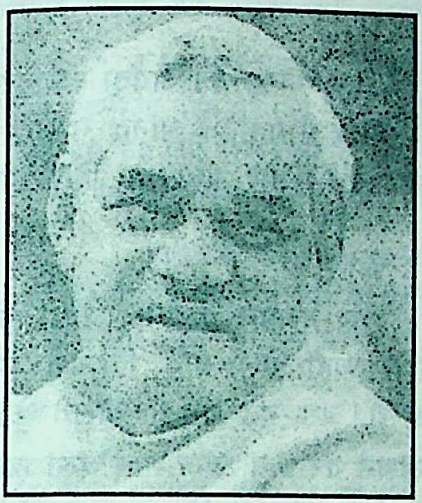

रंग राग और रास इन्हीं तीनों से मिलकर बना है होली का मस्तीभरा त्योहार। इस त्योहार में प्रकृति भी खूब मदद करती है। बसंत की मादक बयार और ऊपर से गेंहूँ की बालियों की मोहक महक।

मैं तो आज भी होली बहुत मस्ती से मनाता हूँ शुरु से ही होली मेरा प्रिय त्योहार रहा है। ग्वालियर में बचपन बीता है। उन दिनों की होली खेलने के ढंग और आज के ढ़ंग में बहुत बदलाव आ गया है। हम तब रंग से नहीं कीचड़ से होली खेला करते थे।

होली के दिन मैं गुझिया बहुत चाव से खाता हूँ। मेरे परिवार का भाँग के साथ गठजोड़ हैं। मेरे पितामह, पिताजी आदि नियमित रुप से भाँग को सेवन करते थे। होली के दिन मैं भी भाँग का सेवन करने में विश्वास करता हूँ। दरअसल, होली के रंग को भाँग और गहरा जमा देती है।

मैं अपनी भाभियों से खूब होली खेलता रहा हूँ। अपनी भाभियों का सबसे छोटा देवर हूँ। होली के दिन उन्हें रंग में डुबोकर ऐसी होली खेलता था कि महीनों उनका रंग नहीं छूट पाता था।

होली के दिन मैं बंधन पर विश्वास नहीं करता। शायद होली की एक सार्थकता यह भी है कि उस दिन मन की सारी कुंठाएँ निकाल जाएँ।

*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लालकृष्ण अडवाणी

(मान्नीय उप–प्रधान मंत्री)

होली भारत का अनूठा त्योहार है जो समाज में चतुर्दिक आनंद, उत्साह, अह्लाद, स्नेह और समरसता बिखेरता है।

मेरा बचपन करांची (सिंध) में बीता है। वहाँ होली प्रायः विद्यार्थी ही खेलते थे। बड़े–बूढ़े कम ही खेलते थे। लिहाज़ा मेरे लिए तो तब की होली खेलने का क्रम आज तक चला आ रहा है। 1936 में सिंध में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का विस्तार हुआ और उसके प्रभाव से सिंध में भी होली जैसा त्योहार प्रचलित हुआ।

होली जैसा त्योहार अलग–अलग रुपों में शेष समाज में भी मनाया जाता है। जब एक उन्मुक्त वातावरण पैदा होता है और शिष्टता की मर्यादाओं से कुछ हटकर व्यवहार करने की प्रकृति को क्ष्म्य माना जाता है तो इससे कुछ तनाव अवश्य कम होता है। लेकिन इस दिशा में बढ़ते बढ़ते जो विकृतियाँ और फूहड़पन होली के अवसर पर दिखाई पड़ता है उससे यह त्योहार मुक्त हो और विशुद्ध स्नेह और समरसता का संचार करे यही कामना की जा सकती है।

*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साहित्यकारों की होली

– राजेन्द्र यादव (कथाकार)

मैंने बचपन में तो होली का बहुत आनंद लिया। हम लोग आगरा के रहने वाले हैं। वहां परम्परागत तरीके से होली खेली जाती थी। टेसू के फूलों का रंग बनाना, ठंडाई घोलना और उसका लुत्फ़ उठाना।

एक बार मैंने भांग की बर्फी खाली और घर आकर सो गया। जब मेरी आँख खुली तो देखा मेरे भाई मेरे पास मूँगफली तोड़ रहे थे, पर मुझे लग रहा था जैसे कोई बम फट रहा हो। चौकी से उतरने पर लग रहा था कि मैं कुएँ में जा रहा हूँ। तब से मैंने कभी भाँग नहीं खाई।

आज तो शहरों की संस्कृति ही बदल गई है। सब त्योहार फीके नजर आते हैं। लेकिन होली पर फिर भी माहौल कहीं कहीं जीवंत लगता है। क्योंकि होली उल्लास और उमंग का त्योहार है।

– डॉ० रामदरश मिश्र (कवि-कथाकार)

होली मुझे सभी त्योहारों में सबसे अधिक प्रिय है। मेरे लिए होली कोई त्योहार नहीं हैं बल्कि यह एक मौसम हैं। बसंत का पूरा महीना मैं बचपन से लेकर इस अवस्था तक ओढ़ता–बिछाता आया हूँ। हमारे संस्कार में तो गाँव का, बनारस का वही रंग पैदा हुआ था जिसे हृदय से मिटाना आज भी संभव नहीं है।

मैं स्कूल से लेकर बी.एच.यू. (विश्वविद्यालय) तक तो वर्ष के ग्यारह महीने प्रतीक्षा ही करता था कि कब फाल्गुन शुरू हो कब, तन–मन में एक ज्वर उतर आए और कब ऐसा माहौल बने जिसमें छेड़ छाड़ की जीवंतता माहौल को जवानी की मस्ती से सराबोर कर दें। इसलिए होली को तो मैं एक तरह से अपने रचना जगत का प्रमुख आयाम भी मानता हूँ।

आज वह होली कहीं नहीं मिलती जो मैं बचपन में खेलता और देखता था। मुझे याद है होली की आखिरी शाम, जब हम लोग चिल्लाने लगते थे –"हाय। फगुनवा बीता जाय।" इतना लगाव होली के प्रति अब कहाँ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

– विष्णु प्रभाकर (साहित्यकार)

होली फसलों का त्याहार है। मुझे बचपन की अपने गाँव की होली कभी नहीं भूलती। गाँव के लड़के चाँदी का सिक्का जमीन में खोंस देते थे और पास कहीं पेड़ की ओट में छिप जाते थे। जैसे ही कोई आदमी उस सिक्के को उठाने के लिए झुकता था, लड़के पीछे से ढेर सारा रंग उस पर उँडेल देते थे। पानी के मटकों में गंदा पानी भर कर किसी से उठवाकर ईंटा मारकर उसके गंदे पानी से उठाने वाले को भिगो देना भी इस का एक हिस्सा था। वास्तव में गाँव में होली का रुख भयानक होता था। यह एक सामूहिक त्योहार था लेकिन अब ऐसा नहीं रहा अब शहरों में हर चौराहे पर होली जलाई जाती है। होली का सामूहिक रूप अब नहीं रहा और अब अश्लीलता भी घर कर रही है। फाग के दिन स्त्री–पुरुष का भेद नहीं रहता था लेकिन अब इन त्योहारों के प्रति लोगों की निष्ठा बदल गई है।

– स्व. भीष्म साहनी (कथाकार)

वसंत ऋतु में जो फूल खिलते हैं उनकी झलक मुझे होली के रंगों में दिखाई देती है। होली वस्तुतः प्रेम का त्योहार है, जिसमें एक दूसरे के ऊपर रंग छिड़कना हमें अच्छा लगता है। हँसी का माहौल होता है। लोग एक दूसरे से मिलते हैं। एक विशेषता इस त्योहार की यह भी है कि इस दिन हम सिर्फ उंसी से नहीं मिलते जिसने हमारे ऊपर रंग डाला है बल्कि हम हर किसी को गले लगाते हैं जो एक बड़ी बात है। इसमें आपसी सम्बन्धों में खुलेपन की प्रवृत्ति आती है। जो संकोच मन के भीतर होता है। वह बाहर आ जाता है। इस तरह से आपसी संबध ज्यादा स्नेहपूर्ण और ज्यादा दोस्ताना हो जाते हैं।

– कमलेश्वर (कथाकार)

मैं तब मैनपुरी में रहता था और होली मनाने का तरीका बड़ा ही हुड़दंगी था। टेसू के फूलों को उबालकर रंग तो बनाते ही थे लेकिन इतने सौम्य रंग से मन थोडे ही रंगता था। हम अपनी मित्र मंडली के साथ खूब चमकीले रंग बनाते थे। हरा नीला, दानेदार रंग उसमें कड़वा तेल डालकर जब गालों पर लगाते थे बड़ा मज़ा आता था। रंग न ही उतरता था, गाल कट जाते थे। हम कुत्ते की पूँछ में खाली टीन तथा डिब्बा बाँध देते थे ताकि जो सोए हुए भी हों वह भी हमारी हुडदंगी टीम में शामिल हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाएँ। हम लोग किसी डोरी में नुकीली चीज फँसा देते थे और किसी का अँगौछा किसी की पगड़ी किसी की टोपी ले उड़ते थे। केवल इतने से ही बचपन का खुराफ़ती दिमांग शांत नहीं होता था। उस समय पढ़ाने के लिए आने वाले तीन–चार मास्टरजी के बैंतों को भी चुराकर होली में डाल देते थे।

जब दोपहर को रंग खेलना बंद कर देते थे तो सब किसी एक घर में इकट्ठें होते थे। वहाँ पकवानों का दौर चलता था। लेकिन रंग गुलाल के समय मर्यादा कभी नहीं लाँघी। गाँव के लोगों के प्रति बड़प्पन जाहिर करने के लिए पैरों पर रंग लगाते थे फिर माथे पर और तब गले मिलते थे।

–कन्हैयालाल नंदन (गीतकार)

मेरे लिए होली के रंग असल में सिर्फ हुड़दंग मात्र कभी नहीं रहे। इनका गहरा सांस्कृतिक अर्थ मुझे बचपन से ही मिला था। ये रंग मेरे लिए हमेशा किसी दूसरे पर अपने आदर प्यार और स्नेह छिड़कने का प्रतीक रहे हैं। मेरे बचपन में इनकी आभा खरीदे हुए रंगों में नहीं खुद के बनाए हुए रंगों में उभरती थी। जंगल से टेसू के फूल लाकर मैं सुखाता था। उनमें हरसिंगार के फूलों का छिड़काव करता था और होली के वक्त उनको भिगोकर उबालकर उनसे रंग बनाता था।

मेरे बचपन में बड़ो पर रंग फैंकने का उतना रिवाज नहीं था जितना हमजोली के साथ चलता था। बड़ों के साथ होली खेलने में हमे चंदन और अबीर लगाने का सलीका सिखाया गया था। अबीर और गुलाल का एक टीका और माथे पर चंदन का लेप करने के बाद बड़ों का चरण स्पर्श कर के जो आशीर्वाद उनसे मिलता था अब उसके लिए मन तरसता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृति कर्मियों की होली

— बिरजू महाराज (संगीतज्ञ)

हमारे यहाँ जिन दोस्तों की टोली थी और घर में भी जिनका आना जाना था वे सब सुर ताल से ज़रूर सम्बन्ध रखते थे, और यही संगीत जब होली की बैठकी में झंकृत होता तो समाँ बँध जाता था। हमारी महफ़िल में उम्र और धर्म का कोई बंधन नहीं होता था।

ढोलक गले में लटका ली जाती थी और यह टोली गलियों में आगे बढ़ती जाती थी। हर घर में जाते और थोड़ा थोड़ा सभी घरों से खाते जाते। हमारे घर में भी व्यंजनों की विशेष तैयारी चला करती थी। गुझिया, खुरमा, नमकीन हम यदा–कदा इन पर धावा बोलते रहते थे।

वैसे तो होली में सब सम्मलित रहते थे लेकिन कुछ घर तब भी ऐसे होते थे जहाँ दरवाजे बहाने से बंद कर दिए जाते थे। मान–मनुहार करने के बाद भी जब घर के अंदर खुद को सुरक्षित समझने वाले लोग दरवाजे नहीं खोलते थे तो हम लोग हज़ारा पिचकारी' (एक लम्बी पिचकारी जिसे कम से कम दो लोगों को दबाना पड़ता था) की धार से दूसरी मंजिल पर खड़े आदमी को भिगोकर संतुष्ट होते थे।

— उमा शर्मा (नृत्यांगना)

हमारे पिजा जी बहुत अच्छी तरह होली मनाते थे। टेसू के फूल से गीला रंग बनाते थे और तब हम लोग होली खेलते थे। गुलाल भी अच्छे अच्छे रंगों में आते थे। टेसू से बने रंग को पिचकारी में भरकर एक दूसरे पर डालते थे। मैं तो बहुत होली खेलती थी। मैं बहुत शैतान थी। तब समय भी दूसरा था अब होली के खेल में वीभत्सता समा गई है। अब तो सब गुलाल लगाकर रस्म पूरी कर लेते हैं।

एक बार मैं नार्वे से भारत आ रही थी, पानी के जहाज से। बीच में होली का त्योहार पड़ा। होली का तो कुछ हमें आभास भी नहीं था न ही होली का सामान ही था। मेरे पास सिंदूर था बस उसी से टीका लगाकर एक दूसरे को मुबारकबाद दे दी।

एक बार वृन्दावन के बिहारीजी के मंदिर की होली देखने गई थी। पर्दा हटता था, बिहारीजी सामने आते थे उन पर टेसू का रंग डाला जाता था। वे फुहारें भुलाई नहीं जाती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

– खुशवंत सिंह (स्तम्भकार)

मेरे लिए होली उल्लास, उमंग और खुशी की अभिव्यक्ति का त्योहार है मेरा जन्म पंजाब के एक रेगिस्तानी गाँव हडाली (अब पाकिस्तान) में हुआ था। बचपन में चार पांच साल मैंने अपनी दादी के साथ वहीं बिताए। हडाली में न होली मनायी जाती थी न दीवाली। मैंने तो होली पहली बार दिल्ली आकर मॉडर्न स्कूल में ही मनायी। उस वक्त इस स्कूल के संस्थापक लाल रणवीर सिह के घर पर होली खेली जाती थी। जब मैं विलायत से कानून की पढ़ाई पूरी करके लाहौर लौटा तो मेरी शादी हो चुकी थी। हम दोनों मोटर साइकिल लेकर एक एक कर अपने हिन्दू और सिख दोस्तों के घर जाते और रंग खेलते।

पंजाब में आनंदपुर साहिब में सिंहगो की होली अलग ही तरह की होती थी। आनंदपुर साहिब में गुरु गोविन्दसिंह ने पहले पहल खालसा पंथ की शुरुआत की थी। आनंदपुर साहिब में होली उसी दिन की वर्षगाँठ स्वरुप मनायी जाती है। इसे होला मोहल्ला कहते हैं। और यह होली के दूसरे दिन मनाया जाता है। उस दिन यहाँ तरह तरह के खेलों का आयोजन किया जाता है। फिर शाम को भाँग पी जाती है। यह होली सिर्फ मर्द खेलते हैं औरतें नहीं।

*

– राजेन्द्र अवस्थी (पूर्व सम्पादक कादम्बिनी)

मेर बचपन की लम्बी स्मृति श्रृंखला में सबसे अधिक स्मृतियाँ तो होली के साथ ही जुड़ी हुई है। होली के पूरे मौसम में दरवाजे–दरवाजे जाकर संवत के ईंधन के लिए पैसा एकत्रा करना, फिर संवत जलाने के लिए पहले गाँव के तमाम लड़कों को एकत्रा करना, ये सब अजीब किन्तु सार्थक स्कृतियाँ हैं जिन्हें याद करने पर दिल तो भर ही आता है।

मुझे अच्दी तरह याद है कि होली में संवत जलाने के लिए जिस घर से हमें चंदा नहीं मिलता था, रात में उस घर का किवाड़ ही तोड़ देते थे। पूरा किवाड़ उठाकर संवत की अग्नि के हवाले कर देते थे। होली जलाने के बाद घडौली मनायी जाती जिसमें गोबर कीचड आदि के साथ होली खेली जाती। फिर दोपहर में रंगों के साथ होली शुरु होती। सभी लोग अन्य स्थानों पर रंग खेलने में मशगूल रहते और हमें लड़कियों के साथ रंग खेलने में आनंद आता था। लड़कियाँ भी तो जैसे इसी पल की प्रतीक्षा में खड़ी होती थीं।

*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(खण्ड ग)

काव्य खंड

द्रुमाः सुपुष्पाः सलिलं सपदमम्, स्त्रियः सकामाः पवनः सुगांधीः।
सुखाः प्रदोषाः दिवसाश्च रम्याः सर्वप्रियै चारुतरं वसंते।।

—कालिदास ❁

आए हैं हम नंद के द्वारे
खेलन फाग वसंत पंचमी सुख समाज विचारे
कोऊ ले अगर कुंकमा केसरि काहू के मुख पर डारे।
कोऊ अबीर गुलाल उडावें आनंद तनन संभारे।।
मोहन को गोपी निरखत सब नीकें बदन निहारें।
चितवन में सब ही बस कीनी, नागरनंद दुलारे।
ताल मंदृगं मुरली डफ, बाजे, झांझन की झलकारे।
सूरदास प्रभु रीझि मगन भए, गोप वधू तन वारे।।

— सूरदास ❁

लाल गुपाल गुलाल हमारी आंखिन मेजिन डारौ।
बदन चन्द्रमा नैन चकोरी, इन अंतर जिन पारौ जू।।
गाओ राग बसंत परस्पर, अटपटे खेल निवारौ जू।
कुंकुम रंग सों भरि पिचकारी, तकि नैनन जिन मारौ जू।।
बंक विलोचन, दुःख के मोचन, भरि के दृष्टि निहारौ जू।
नागरी नायक सब सुखदायक कृष्णदास को तारौ जू।।

— कृष्णदास ❁

पिउ संजोग धानि जोबन बारी। भंवर पहुप संग कराहि धमारी।
होइ फागु भलि चांचरि जोरी। बिरह जराइ दीन्ह जसि होरी।।

—मलिक मोहम्मद जायसी ❁

जमुना तट सों, पट घूघंट सों, घट भर चली सकल ब्रजनारी।
चरचंगे सब लोग, नगर के दैया, भर गुलाल मैं को रंग डारी।।

— हित हरवंश ❁

चलो तुमहू देखो कैसी मची, होरी गावत रंग महल नारी।
एक गावत एक मृदंगबजावत, एक नाचत दे दे कर तारी।
अबीर गुलाल केसर चका, तकि तकि मारत गावत हे गारी।
तानसेन प्रभु खेल रचायौ हैं, फगुआ लीन्हों है भारी।।

—तानसेन ❁

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रसिया है खिलाड़ी होरी को, रसिया है,
अबीर गुलाल भरत नैनन में, डारत है रंग केसर को,
पकरि न पावत भाग जात है, मूठ भरत रोरी की।
'कंचन कुंवरि बचो नहिं प्यारे, परिहै दांव किशोरी को।

— रानी कंचन कुंवरि

सिर बांधे मुकुट खेले होरी
पहली होरी बैकुंठ में खेली, विष्णु रमा की है जोरी।
दूसरी होली केलाश पै खेली, शंकर पार्वती की है जोरी।
तीजी होरी त्रेता में खेली, राम सिया की है जोरी।
चौथी होरी द्वापर में खेली, राधा किशन की है जोरी।
पांचवी होरी भक्तों ने खेली, रंग अबीर की है जोरी।

—कवि भक्त

फागुन के दिन चार, होरी खेल मनारे।
बिनि करताल, पखावज बाजे, अनहद की झंकार रे।
बिनु सुर राग, छतीसों गावें, रोम रोम, रंग सार रे।
झील—संतोष की केसर खोली, प्रेम गीत पिचकारी रे।
उड़त गुलाल लाल भौ अम्बर बरसत रंग अपार रे।
घर के सब पट खोल दिए, लोक लाज सब डार रे।
होरी खेल पीव घर आए, सोई प्यारी प्रिय प्यार रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहार रे।

—मीराबाई

पुलकती आ बसंत रजनी
मरमर की सुमधुर नूपुर ध्वनि,
अलि गुंजित पगों की किंकिण,
तरल रजत की धार बहादे
मृदु स्मित से सजनी,
विहँसती आ वसंत रजनी।

— महादेवी वर्मा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रंग उमंग समोई रहे, रसमोई रहै ब्रज की अरगोरी।
शील स्नेह, सनी सरसानी, रहै सदा राधिका श्याम की जोरी।
बाल गुपाल विहार करै नित, कुंज कुटीर छए ब्रज खोरी।
पौरी सदा, रंग घौरी रहे, चिरजीवी रहै, ब्रज की रंग होरी।।

— भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ❁

फाग की भीर अभीरन में, गहि गोविन्द भीतर लै गई गोरी।
छीनि पीताम्बर कम्मर से सुविदादई, मीडिकपोलन रोरी।
नैन, नचाइ, कही मुस्काइ, लला फिर खेलन आइयौ होरी।

— पद्माकर ❁

फागुन रस भींजे सहज, आँखिन विलसत आय।
यह सुख सरस बसंत को, हिय भरि रहूयो घुमाय।।

—घनानंद ❁

वरन–बरन तरु फूले उपवन वन, सोई चतुरंग संग दल लहियतु है।
बंदी जिमि बोलत, बिरद वीर, कोकिल है, गुंजत मधुप गानगुन गहियतु है।
अहै आस–पास, पुहपन की सुवास सोई, शोभा की सुगंध मांझ, सने रहियतु है।
शोभा की समाजु 'सेनापति' सुखसाजु आजु, आवत बसंत ऋतुराज कहियतु है।

—सेनापति ❁

सिर हिलाती, बजा–बजा बाजे, तोड़ती तान पैंतरे देती।
मुँह चिढ़ाती हुई भवें मटका, मुस्कराती हुई तोष लेती।।

—अयौध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ❁

मार दी तुझे पिचकारी, कौन री रंगी छवि वारी।
फूल सी देह द्युति सारी, हल्की तूल सी सँवारी,
रेणु ओ मली सुकुमारी, कौन री रंगी छवि वारी।

—सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ❁

होली गाना जश्न मनाना, ओ नव युग के पहरेदारो।
रास रंग में भूल न जाना पर सीमा की पहरेदारी।
जागे नई प्रगति में गति भर, जन जन का विश्वासी अंतर,
रहे न खाली, कभी तुम्हारी, समता के रंग की पिचकारी।

— शिवमंगल सिंह सुमन ❁

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्यों मो पै रंग की मारी पिचकारी,
देखौं कुँवरजू, दुंगी मै तोहि गारी।
बहुत दिनन में हाथ लगे कैसे जाने दूँ
मैं फगुआ तो संग, पीठ पकर कर लूँ।
शौक रंग ऐसे ढीठ की
इनसे खेले कौन अब होरी।
मुख मोड़े और हाथ मरोड़े
करके वह बरजोरी।

—बहादुरशाह जफर ❁

आ झमके ऐश तर वया वया, जब हुश्न दिखाया होली ने।
हर आन खुशी की धूम हुई, यूँ लुत्फ जताया होली ने।
हर सातिर को खुरशंद किया, दिलशाद किया और मोह लिया।
उफ् रँगींन, नक्श सुनहरी का, जिस वक्त बजाया होली ने।

—नजीर अकबराबादी ❁

नंद के नंद देखो होरी मचाई
मैं जमुना जल भरन जात ही, मारग बीच लुकाई।
केस झटक मीरा सीस नवायों, ऐसी कीन्ह रुखाई।
बरजोरी मोरी छीनी मुंदरिया, नाजुक मुरकी कलाई।
'मुश्तरी' पिया को लाजन आई, नंद की नंद देखो होरी मचाई।

—मुश्तरी साहब ❁

ऊधौ हमरी तुम सुधि बिसराई, देखो होरी आई।
आप जाय, द्वरिका छाए, हमें यहां बिसमाई।
करै कुब्जा संग अपना, हमको जोग पढ़ाई।
नई यह चाल चलाई, देखो होरी आई।

— मौलवी हफीजुन्ता खान ❁

रसखानि गुलाल कीं धूधर में
ब्रज बलन की द्युति यों दमकै।
मनो सावन मास ललाई के माँझ
चंदू दिसि लौं चपला चमकै।

—रसखान ❁

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहता हूँ गुलशने कुहना पै आ जाए शबाब
तिनका तिनका फूल हो, और पत्ता पत्ता आफ़ताब।
इरतिका के रंग से, लबरेज झोली हो मेरी,
इनलाब ऐसा कोई हो तो मने होली मेरी।

—सीमान अकबरी ❁

हमारी बज़्म में अज़मे मौहब्बत लेके आई है,
ये होली आज फिर रंगी तबीयत लेके आई है।
गई थी छोड़कर मुझको तने तन्हा ज़माने में
नए अंदाज—ओ—शोखी शरारत लेके आई है।
किसी की जान लेने पर तुली थी बस यही होली,
किसी जालिम सितमगर की हकीकत लेके आई है।

—रौनक निज़ामी ❁

फागुन में उड़त गुलाल जी को जंजाल
अजब त्यौहार बरसता रंग है।
उफ ढोलक, झांझ, मृदंग बजत मुहंचंग है।
सौतन पिय खेलेफाग, गा रही राग,
हमे दे दे दाग, ये ढंग बेढंग है।
केसर अबीर की झोली, उड़ती गुलाल की होली,
मलो मुख, रोली, रंगों की जंग है।

— इंदरीश ❁

ऐसा मन रँग दिया समय के रंगों ने
अब कोई रँगे शरीर हमें परवाह नहीं।
सूरज पिचकारी भरें हुए, बौछार बसन्ती डाल रहा।
सरसों का आंचल भीग गया, धरती सोने में ढाल रहा।
ऐसा तन गया निरर्थ पसीने से, अब रस्मी लगे अबीर हमें परवाह नहीं।
आओं बसन्त त्यौहार हँसी, मन, हँसने का ही मौसम है।
तुम मिलकर गले, गुलाल मलो, आए हो यह भी क्या कम है।
सारा धीरज पी लिया अश्रु की प्यासों से, अब कोई करे अधीर हमें परवाह नहीं

— मधुर शास्त्री ❁

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आओ मीत फाग के, गाओ गीत आग के,
आज तो होली है, बरस रही गोली है,
गोली के गीत गाओ, होली के गीत गाओ
फागुन की मस्ती में, गाओ गीत फाग के
आओ मीत फाग के, गाओ गीत फाग के।
देश की, सुरक्षा में, सब कुछ त्याग के,
आओ मीत फाग के, गाओ गीत आग के।।

—डॉ० श्याम सिंह शशि ❁

जब प्यार के गीत सयाने हुए तब द्वार खड़े क्यों तकते हो,
लो ऋतु का आँगन महक उठा, तुम फूलों से खिल सकते हो,
नव ज्योति के संग विकास हुआ आ लेलो अपनी झोली में,
ये खुशिया लय के साथ खड़ीं, है प्यार बरसता होली में।।
रंगीन उमंगों से तुम भी उत्साह सहित मिल सकते हो
लो ऋतु का आँगन महक उठा, तुम फूलों से खिल सकते हो,

—डॉ० ताराचन्द्र पाल 'बेकल' ❁

ब्रज मंदिर आज मची होरी, ब्रज मंदिर-
होली का पावन पर्व मंगलमय हो
देवीदास गर्ग
सोनल फूड्स (प्रा0) लिमिटेड
'राज दरबार' पान मसाला
डेम्पियर नगर, मथुरा (उत्तर प्रदेश)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रजभाषा होली कवि सम्मेलन

शंकर के आँगन मे फाग मच्यौ जोरदार,
भूत प्रेत आए दल जोरि सुख पामें हैं।
हो हो करि हुल्लड़ मचामें, मुसकामें गामें,
रंग बरसामें अनुराग उपजामें है।
'विष्णु कवि कहैं, स्वामि कातिक कमाल कियौ,
लैके पिचकारी, गजसीस पै चलामें है।
कमनीय, कान्ति बारे, सुमुख गजानन हूँ,
सूँड में गुलाल भरि, खूब छिरकामें है।

—विष्णुदत्त शर्मा 'विशारद' (मथुरा)

रँगीलौ मौसम प्यार कौ
काहे करत गुमान कि जुबना है दिन चार कौ,
बाजत है ढप ढोल चंग पै, गावत राग धरार,
रसियन के अलगोजा बाजे, सुनि बिछुअन झनकार।
हंस मौसम सिंगार कौ। रँगीलो.....
काहे कूँ तू रूंसे मटकै, काहे गाल फलात,
काहे डयौढ़ी डयौढ़ी डोले, काहे न तू बतरात
समै नहीं तकरार कौ। रँगीलो.....
उछरे उछरे डोल रहे हैं हुरियारिन हुरियार,
रसिया घायल कर डारे है चोट दृगन की मार,
मान कर लै मनुहार कौ। रँगीलौ.....
घर घर लाल गुलाल उड़ौ है, बरसि रह्यो अनुराग
बरस दिना में होरी आवै, जिए सो देखै फाग।
झरत, झरना रस धार कौ,
रँगीलौ मौसम प्यार कौ।

—गोपाल दास मुद्गल (डीग)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

झारौ मन की गरद गुबार, रंग रँगीली होरी में,
जारौ झगरेन की झखार, रंग रंगीली होरी में,
होरी तौ है परब मिलन कौ, बड़ौ न कोऊ छौटो।
दिना आज के सान ते दाम खरौ अरु खौटो।
परखैया, है जाय उदार, रंग रंगीली होरी में। झारौ मन.....
फूले फूले फगुआ डोलैं, ऊली ऊली गोरी,
घर की लाज ताख मै धरि दयी का छोरा का छोरी।
गोरी है गई सब गुलनार, रंग रंगीली होरी में।
कारी कौ मुख गौरौ है जाय, गोरी की मुख कारौ
जादूगर बनि आई होरी, अजब गजब करि डारौ
रहि गयौ विधना आँख पसार, रंग रंगीली होरी में।

—वरुण चतुर्वेदी (भरतपुर)

होरी को परब प्रीतिरीति को प्रतीक मीत।
मेल औ मिलापन के रंग संग लावै है।
बीती अनुरीतिनु की बातन पै धूरि डारि,
आतम मिलन कौ सु औसर सुझावै है।
जेती निज करनी है तेती सब भरनी
पावन पुरातन की रीतिनु बतावै है
होरी के परब कूँ न मानिए ठिठौरी मीत।
होरी तौ ढाई आखर प्यार के सिखावै है।

—डॉ० जगदीश लवानिया (हाथरस)

खेले तीन लोक ते न्यारी होरी, ब्रज के नर नारी
गालन ते रिगरै है रोरी, गोरी हाथन गहैं कमोरी।
विजया छानै थोरी थोरी, फिर सब मिल जुल खेले होरी
टेसू कौ रंग चढै, चलै जब भर भर पिचकारी.....
गले मिलें सब द्वेष भुलावैं, गालन लाल गुलाल लगावैं।
नाचैं हिल मिल रसिया गावैं, नेहा कौ अमरत बरसावैं।
सब जग होरी ब्रज में होरा, कहनावत प्यारी
खेले तीन लोक ते न्यारी, होरी ब्रज के नर—नारी।

— महेश चन्द जैन 'ज्योति' (मथुरा)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भयौ जाड़े को अंत, आयौ मोहक बसंत,
पात रूखन के अब झरि रहे होंस होरी की हिय भरि रहे।
बरसै गुलाल रंग, केसरि कसूमी, सिगरी धरनि, फाग मस्ती में झूमी,
ब्रज में अजब रंग जाकौ छायौ ऐ, गोपिन लठा, गोप पिचकारी चूमी,
मचौ ऐसौ हुड़दंग फीकौ प्यारु भरौ रंग, बैर होरी में जरिबरि रहे।
हौंस होरी की हिय भरि रहे।

—भोजराज सिंह 'भोज' (हाथरस) ❁

धरती करि सोलह सिंगार दुलहिन बाकी रे बनी,
बाँकीरे बनी, नीकी लागे सजनी
औढे चूनर सतरँग वारी, पीरी धरती हरित किनारी,
रंग अनेकन बूँटेदार दुलहिन बाँकी रे बनी।
कुन्दकली सुचि गजब छबीली, लाल कपोलन नवल लजीली,
झूमर मोतिन माँग सम्हार दुलहिन बाँकी रे बनी।
चिबुक पलासन माहुर बैंदी, गुच्छन झूमक नवछवि मेंहदी।
उभरे कुच कामिन कचनार, दुलहिन बाँकी रे बनी।

—राधा गोविन्द पाठक (बलदेव) ❁

फागुन आयौ मन मस्तायौ, गैल गलिन में राहन में,
रस कौ सागर सौ लहरायो, प्यासी प्यासी बाँहन में,
डोलि गई कोउ चुनरिया, रंग बसंती दिख्यो,
काऊ ने रूप पै गीत लिखौ, कोऊ बिन मोल बिक्यौ,
धूप पै, गाल पै, धरि के अबीरा, कोऊ बुलावत छाँहन में,
होरी की भीर जुरी है बाबरी अँखिया,
ग्वालन के संग नाचत गावै, आसावरी सखियाँ
कोऊ नहीं सुख, जो सुख होवै, रंगन के अवगाहन में।

—वीरेन्द्र मिश्र ❁

रंगन घिरे मन, होरी के रसिया अंगन में अजब बहार।
ऊँची अटारी तै झुकि रंग बरसै, आँखियन ते पिचकारी धार,
तालन चौपालन पै बाजै मँजीरा आतुर भए हर प्रान।
कर में कमोरी साथ सँभारै, मुठैं गुलानन की तान।
दिस दिस द्वारे भीनी चुनरिया, भीजै है हार सिंगार। रंगन.....

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीनी महक, रस जगती पै उमड़ै, कंठ भरे मृदु गान
पायन की थिरकन, हाथन तै माँगे जीते जगत कौ प्रमान
लाज लजीली, जीवै चितवन, होरी के रंगन हजार। रंगन.....

—सुरेश चतुर्वेदी ❁

ढप ढोलक, चंग मंजीर, मृदंग, बजै खटताल उपंग कटोरी
कवि सेगर नन्द किशोर बने नर, नारि बनी वृषभानु–किसोरी।
बहु रंग अबीर गुलाल उड़ै पिचकारिनु धार छुटै झकझोरी,
हुरदंग मच्यौ, ब्रज पूरौ नच्यौ, गिरधारी रच्यौ धरि रंग कमोरी।

— जगन सिंह सेंगर ❁

नाजी नैना री नुकीले नयो ढंग खेलि रहे संग होरी।
नैना खेलै, नैन खिलावै, नैना डारै रंग,
नैना मारै प्रेम प्रीति की पिचकारी पंचरंग, भिजोय देह बरजोरी।
मो नैना नित डोलै सजनी, तो नैनन के संग।
बसिवौ चाहे एक रैन ढिंग, भूलै नवल विहंग, बसैरौ दे दै गोरी।
रूप सरोवर में दोउ तेरे दृग फूले अरविन्द,
मो चख भ्रमर लालची डौलै, पीवें कूं मकरंद, आज चोरी चोरी।
जो लौं नैन, नैन माँहि देखै, तो लौ रहै अपंग।
ब्रज बसि कैसो नैक, बहैंगे एक दिन प्रेम तरंग, रंग री चुंदरी कोरी।

— स्वामी मेहाश्याप ❁

टोल डटे उत ग्वालन के, इतमें इकठौरी भई ब्रजबाम है।
गली वीथी, बजार अटा की छटा, है रँगीली घटा सु पटै सब धाम है।
चटकीले चटाक उड़े रंग पै, रंग द्वै ही चढ़े जो अटे ब्रजगाम है।
छहरै जिनकी है छटा, चँहुधा, इक गोरी कै रंग है दूसरौ श्याम है।

—राम नरायन अग्रवाल 'भैया जी' ❁

ESS & JAYgraphics
ALL KINDS OF OFFSET & SCREEN PRINTING
TAGS, STICKERS, VISITING CARDS, BARCODE
STICKERS, PRINTED & WOVEN LABEL PVC BOXES
LETTER HEAD, BILL /CHALLAN BOOK ETC.
Happy Holi
Call: Sarvan/Junaid
9899086167/ 981108267

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोक-काव्य

भोजपुरी

सजनी हों मन मोर बसन्त न आवै।
फूले फूल फरै जनि तरुवर राग–फाग कोउ गावै,
रहत उदास, मोर मन दिन भर, छिनहुन धीर धरावैं।
अम्बा मउर कूच महुआ मंह कोइलि कुहुक मचावै
दखिन बयारि बहत जिय जारत, पीतम मोहि जो दरसावै।

गढ़वाली

आई रितुड़ी रे सुणमुणया रे, आइ गयो बालो बसन्तरे।
फूलण लैगी गाडू की प्योंलड़ी, फूली जालू डांडू बुरांस
बुरांस दादू तू बडू उतौल रे औरू फूलू तू फूलण नी देन्दो।
जाति की खास ठकरौल, वास तेरी कै देवन हरे।

बुंदेलखंड़ी

मौ पे रंग डारौ साँवरिया
मै तो उसई रंगों में डूबी लाला।
बुरा मानत हो तो माना करो
हम तो डारैंगे तुम पे ही रंग
फागुन की मस्ती में दुनिया डूबी
हिरदे में लेके उमंग
रंग अबीर उड़े, गलियन में
सारी दिशाए दंग।

मालवी

कानी धरारे भुगुट खेलो होरी
कहाँ से आया कुँवर कन्हैया, कहाँ से आई राधा गोरी।
गोकुल से आया कुँवर कन्हैया, मथुरा से आई राधा गोरी।
श्याम बरन का कुँवर कन्हैया, गोर बरन राधा गोरी।
नरवदा की रंग से भरी पिचकारी, बंसीवाला से खेलांगा फाग।
कच्ची कली को रंग बनायो, कंचन की बनी पिचकारी
भरि पिचकारी राधा के माथे पर डारी, तो भींग गई जी गुलसारी।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शेखावटी (राजस्थानी)

तालैरिया मगैरिया से मोरु पाई ला रे रैह्या
आयो आयो धोरां वालो देस वीरो विणजारो ए.....
अल्लातो पल्ला दादर मोर रंग दे, म्हारै पीव जी,
कै दाय कोनी आयो रै लीलगर और रंग दे.....
कठै सूं आई सूंड, कठै सूं आयो जीरो
कठै सूं आयो ए भोली भावज म्हारी बीरो।

हरियाणवी

फागण में ख्याल रचाया रसिया फागण में,
पैलो जो आणीमारे ससुरो लेवा आय।
बूढ़ा रे साथे मारी जाय रे बलाय, फागण में.....
दूजौ लो आणों मारा जेठ लेवा आया,
मोटा पेट बारा साथे मारी जाय रे बलाय, फागण में,
तीजौ जो आणो मारे देवर लेवा आया
छोरा छाबरा रे साथे मारो जाय रे बलाय, फागण में
चौथा जो आणो मारे सायब लेना आया,
साथ बंजीरा साथ मैं तो काल की तयार, फागण मे।

कौरवी

राजा जनक नैन भर रोये।
बनी बात बिगड़ी आके, अब बिधना तै वया ठानी।
अबन राम है, बचे किसी से, सिया करम की है हानी।
परसराम का तबल जबर है हम दीन दुनी से खोये।
नाम लिए से रामचन्द्र का, फौरन गरदन मारेगा।
कोमल बदन, उम्र की बाले, जिन्हे रिथी हन डालेगा।
हँसी करैगी परजा सारी, मेरे हो गए आज बिगोए।
जितने दुसमन रामचन्द्र के, सारे हँसे अपने मन में।
राम लखन की जान बचैना, मारे जांगे कोई छिन में
आम कहाँ से खावै भाई, जाने पेड़ बबूल के बोए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फाग

ईसुरी की फाग

पिचकारी हम पे काए मारी, सारी बदन तरबतर कर देआ
ऊपर से रंग दई नई सारी।
न हमने तमुसे रस्ता रोको, न हमने तुम खों दई गारी।
लाज सरम तुमखौं न आवै, हँस रहे तुम दै दै तारी।
कैसे भौजी अनमनी कैसे बदन मलीन
कैसे नैना लाल दोउ, कैसे हई छवि दीन।
मन मारे की मनि लई, कै काऊ ने दीन
कै हिसा हिरनी तजी, कै माँजो व्यापी मीन।

ब्रज की फाग

* होरी खेलन आयो श्याम, आज याहि रँग में बोरौ री।
रंग में बोरो री कन्हैया कूं रंग में बोरौ री।।१।।
कोरे कोरे कलश मँगाओ, या मैं केसर घोरौ री।
मुख ते केसर मलो, करो कारे ते गोरौ री।।२।।
लोक लाज–मरजाद सबै, फागुन में तोरौ री।।
हाथ जोड़ जब करै बीनती, तब याहि छोरौ री।।३।।
हरे बांस की बाँसुरिया, याहि तोर मरौरो री।।
चनद्रसखी यों कहै आजु बन बैठ्यो भोरौरी।।४।।

* होरी खेलत हैं गिरधारी।
मुरली चंग बजत ढफ न्यारो, सँग जुबती ब्रजनारी।।
चंदन केसर छिड़कत मोहन, अपने हाथ बिहारी।।
भरि–भरि मूठ गुलाल लाल चहुँ, देत सबन पै डारी।।
छैल छबीले नवल कान्ह सँग, स्यामा प्राणपियारी।।
गावत चार धमार राग हहँ, दै दै कल करतारी।।
फाग जु खेलत रसिक साँवरो, बाढ़यो रस ब्रज भारी।।
मीरा कूँ प्रभु गिरधर मिलिया मोहनलाल बिहारी।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उर्दू शायरी में होली का गीत

प्यार के रँग में रँग लो मन को, सब मिलकर खेलो होली।
होली तो होली नँदजी, क्यों अब बीती गठरी खोली ।।१।।
पी के तेरा प्रेम प्याला, मैंने अपनी सुध-बुध खोई,
कोई न अपना साथी जग में, मैं तो तेरी होली
श्याम ने रँग दी राधा की कोरी चुनरिया, चोली
होली तो होली नँद जी, क्यों अब बीती गठरी खोली ।।२।। प्यार.....

तेरे प्रेम की नदिया जग में हरदम बीती रहती है,
तेरी बाँसुरिया की धुन हर पल कानों में कुछ कहती है।
हरदम मेरे मन में बसी है श्याम जी तेरी सुरतिया भोली ।।३।। प्यार.....

झूठे जग के मोह का रँग सारे का सारा कच्चा है,
भव सागर से पार करेगा, बस तेरा नाम ही सच्चा है,
जग से नाता तोड़ लिया है, नँद जी मैं तो श्याम की होली ।।४।। प्यार.....

–नन्द कुमार सभरवाल

ब्रज भाषा में होली का गीत

गालन लाल गुलाल लगा, गुलचा दुहु गालन मार गयौ है।

आज बड़ी अनहोनी भई, नटनागर बादर फार गयौ है।
औचक आय घुसौ घर में, हिय की सब हौंस निकार गयौ है।
नैनन सौं कछु मार गयौ, मुसकानन सौं पुचकार गयौ है
गालन लाल गुलाल लगा, गुलचा दुहु गालन मार गयौ है ।।१।।

चैन चुराय गयौ चित कौ, जब सौं अँखियाँ कर चार गयौ है।
आँखिन-आँखिन डार गयौ, हिय में तसबीर उतार गयौ है।
बावरि मोहि बनाय गयौ, मधुबोलन सौं रस ढार गयौ है ।।२।। गालन लाल.....

काह कहूँ कह आवत ना, जब सौं हँसकैं हुरियार गयौ है।
नींद निगोरि न आवत है, हमकूं इतनौ कर प्यार गयौ है।
चेटक सौ हमपै करकैं, करकैं कछु कौल करार गयौ है ।।३।। गालन लाल.....

फाग मचाय कैं आग लगाय रिझाय हमैं रिझबार गयौ है।
रोग लगाय गयौ, अँखियान की आदत खूब बिगार गयौ है।
घूमत हूँ चकई बनकैं, मन हेरत-हेरत हार गयौ है ।।४।। गालन लाल.....

गोपाल प्रसाद मुद्गल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रज के होरी के रसिया

आज बिरज में होरी रे रसिया
होरी रे रसिया बरजोरी रे रसिया।।
कौन गाँव के कुँवर कन्हैया लाला,
कौन गाँव राधा गोरी रे रसिया .....आज बिरज में ।।१।।
नन्द गाँव के कुँवर कन्हैया लाला,
बरसाने की राधा गौरी रे रसिया .....आज बिरज में।।२।।
कौन के हाथ कनक पिचकारी री लाला,
कौन के हाथ कमोरी रे रसिया .....आज बिरज में ।।३।।
कृष्ण के हाथ कनक पिचकारी लाला,
राधा के हाथ कमोरी रे रसिया .....आज बिरज में ।।४।।
उड़त गुलाल लाल भये बदरा,
कै मन केसर घोरी रे रसिया .....आज बिरज में ।।५।।

जब ते धोखौ दैकें गयौ, श्याम संग नाँय खेली होरी।
ऊधौजी तुम जाऔ द्वारिका, लै पाती मोरी।
कहियों यों समझाय, दरश बिन तरसें ब्रज–गोरी।।१।।
परसों की कह गये, मान गई मैं ऐसी भोरी।
बीत्यौ बरस जि सगरौ, रह गई चूँदरिया कोरी।।२।।
दिंगी प्रान गँवाय, गात की है जायगी होरी।
लैयौ बेग लिवाय, उमरिया रह गई है थोरी।।३।।
ब्रजवाला दई त्याग, प्रति कुब्जा के संग जोरी।
कहै कवि 'दई त्याग' प्रति कुब्जा के संग जोरी।
कहै कवि 'घासीराम' सदाँ यह बनी रहै जोरी।।४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रसीली होरी :-

रंग में रँग दई बाँह पकर लई, लाजन मर गई होरी में।।
इकली भाज दई होरी में, हरमत लाज गई होरी में।
चटकदार चोली में, सरवट पर गई होरी में ।।१।।
चूँदर रंग बौरी होरी में, पिचकारी मारी होरी में
हैकें श्याम निशंक, अंक भुज लई होरी में।।२।।
गाल गुलाल मल्यौ होरी में, मोतिन लर तोरी होरी में।
लोक लाज खूँटी पै, कान्हा धर दई होरी में।।३।।
बरजोरी कीनी होरी में, ऐसी बुरी भई होरी में।
'घासीराम' परि सब तन की हर लई होरी में।।४।।

बरसाने की होरी

फाग खेलन बरसाने आये हैं, नटवर नन्द किशोर।।
घेर लई सब गली रँगीली, छाय रही छवि छटा रँगीली।
इन ढोल मृदंग बजाये हैं, बँशी की घनघोर।।१।।
जुर मिलकें सब सखियाँ आईं, उमड़ घटा अम्बर में छाई।
जिन अबीर गुलाल उड़ाये हैं, मारत भर–भर झोर।।२।।
लै रहे चोट ग्वाल ढालन पै, केशर कीच मलें गालन पै।
हरियल बाँस मँगाये हैं, चलन लगे चहुँ ओर।।३।।
भई अबीर घोर आँधियारी, दीखत नाहीं नर अरू नारी।
राधे सैन चलाये हैं, पकरे माखन चोर।।४।।
जो लाला घर जानों चाहौ, तौ होरी कौ फागुआ लऔ।
श्याम ने सखा बुलाये हैं, बाँटत भर–भर झोर।।५।।
राधे जू के हा हा खाऔ, सब सखियन के घर पहुँचऔ।
'घासीराम' कथा गाये हैं, लगी श्याम ते डोर।।६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनन्द, उल्लास और सौंदर्य के पर्व होली
के शुभ अवसर पर हार्दिक बधाई।

—गौर सुन्दर अग्रवाल

डोक्यूमेंट राइटर/विधि सलाहकार

प्रधान कार्यालय :
आर. यू. ३५८, विशाखा एन्क्लेव,
पीतमपुरा, दिल्ली—८८
दूरभाष : २७०७४८७३

शाखा कार्यालय :
ओल्ड कोर्ट कम्पाउंड,
कश्मीरी गेट, दिल्ली—६
दूरभाष : २३९६६१६१

निवास :— २०३, दीपाली एन्क्लेव, पीतमपुरा, दिल्ली—८८
दूरभाष : २७०११२१६, २७०१०३००

Happy Holi *Happy Holi*

KMG

Metals • Electricals • Dairy Products • Leasing & Finance
• Exports Imports • Distribution of Raw Materials
• Information Technology • Siemen's System House
• Charitable Activities

BASUDEV GARG, CHAIRMAN

KMG GROUP

375, Main Road, Gazipur, Delhi-110096 (India)
Ph.: 91(11) 246 5551, 5552, 5553, 5554
Fax : 91(11) 205 5200
E-mail : info@kmggroup.com
bgarg@kmggroup.com
Web Site : www. kmggroup.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्थान के संस्थापक सदस्य

अध्यक्ष
श्री त्रिलोक नाथ चतुर्वेदी
आई० ए० एस० (अवकाश प्राप्त)
भारत के पूर्व नियंत्रक एवं महालेखाकार,
राज्य सभा सदस्य

कार्यकारी अध्यक्ष
श्री जे० वीराराघवन
आई० ए० एस० (अवकाश प्राप्त)
पूर्व सचिव (संस्कृति)
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली

उपाध्यक्ष
१. प्रो० पृथ्वीनाथ भार्गव
पूर्व डीन, फाइन आर्ट संकाय,
आगरा वि० वी०, शीतला घाटी, मथुरा
२. श्री वीरेन्द्र प्रकाश, आई० ए० एस०
कमिश्नर, वित्त कमीशन, दिल्ली

सचिव
प्रो० डा० रामनारायण गोयल
पूर्व निदेशक (अध्ययन)
कम्पनी सचिव संस्थान, नई दिल्ली

संयुक्त सचिव
श्री एस० एन० यादव
वाइस चेयरमैन, आई एल एम इंस्टीट्यूट
लोधी रोड, नई दिल्ली

प्रचार सचिव
श्री सत्येन्दु याज्ञवल्क्य, मथुरा

कोषाध्यक्ष
प्रो० डा० रोशन लाल वार्ष्णेय
पूर्व निदेशक, भारत का
विदेशी व्यापार संस्थान, नई दिल्ली

सदस्य
श्री जे० एस० वार्ष्णेय
डॉ जे० सी० वर्मा
श्री वी० एस० अग्रवाल (चार्टर्ड एकाउटेंट)
प्रो० वी० के० भसीन

संस्थान की शोध–समितियाँ

१. भाषा–साहित्य–कला–शोध–समिति

२. सामाजिक–विज्ञान–शोध–समिति

३. धर्म–दर्शन–अध्ययन–शोध–समिति

४. पुरातत्व–शोध–समिति

५. प्रबंध–उद्योग–व्यापार–शोध–समिति

ब्रज से संबंधित विषयों पर अनुभवी एवं सुयोग्य निर्देशकों के निर्देशन में विभिन्न विश्व विद्यालयों से शोध–कार्य की व्यवस्था है।

ब्रज–गौरव में विज्ञापन–दरें

अंतिम कवर पृष्ठ
रंगीन १०,००० रू०
श्वेत–श्याम ८,००० रू०

भीतरी कवर पृष्ठ
श्वेत–श्याम ६,००० रू०

मुद्रित पृष्ठ (श्वेत–श्याम)
पूरा पृष्ठ ५,००० रू०
आधा पृष्ठ ३,००० रू०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुखपृष्ठ ब्रजबासी आर्ट प्रेस लिमिटेड, नई दिल्ली के सौजन्य से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi